सर्वश्रेष्ठ एकांकी

नत्थन सिंह

सुधा भूषण

सर्वश्रेष्ठ एकांकी

सम्पादक

नत्थन सिंह, पी-एच० डी०

तथा

सुधा भूषण

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-११००५५
शोरूम : ४/१६-बी, आसफअली रोड, नई दिल्ली-११०००२

शाखाएँ :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१
८५/जे, बिपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१
ब्लैकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-४००००१
खजांची रोड, पटना-८०००२
माई हीरां गेट, जालंधर-१४४००८
१५२, अन्ना सलाए, मद्रास-६००००२
३, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-५६०००६
६१३-७, महात्मा गांधी रोड, एनकुलम कोचीन-६८२०१८

मूल्य : रु० ६.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रविन्द्र प्रिन्टर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ में मुद्रित।

अनुक्रम

		पृष्ठ संख्या
हिन्दीं-एकांकी		क-त
१. दीपदान	: डा० रामकुमार वर्मा	१-३४
२. ऊसर	: श्री भुवनेश्वर	३५-५०
३. खिड़की की राह	: श्री जगदीश चन्द्र माथुर	५१-७६
४. पापी	: श्री उपेन्द्रनाथ अश्क	७७-९२
५. सीमा रेखा	: श्री विष्णु प्रभाकर	९३-११२
६. बादल आ गये	: डा० लक्ष्मी नारायण लाल	११३-१४०

हिन्दी-एकांकी

एकांकी साहित्य-रूप बीसवीं शताब्दी की देन है; जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य देशों से हुआ। यद्यपि संस्कृत नाट्य-साहित्य, सिद्धान्त और रचना दोनों दृष्टियों से, बड़ा समृद्ध एवं गौरवशाली है; तथापि यह स्वीकार करने में कोई हीनता नहीं कि उसमें आधुनिक एकांकी जैसी कृतियों का नितान्त अभाव ही नहीं; प्रत्युत उसकी विधा का भी कोई शास्त्रीय विवेचन दृष्टिगोचर नहीं होता।

रूपक तथा उपरूपकों के भेदों में कुछ प्रकार मात्र-एक अंक के हैं; यथा रूपकों में भाण, वीथी, व्यायोम, अंक और प्रहसन, तथा उपरूपकों में गोष्ठी, नाट्य-रासक, काव्य, प्रेंखण; रासक, श्रीगदित, विलासिका (विनायिका), हल्लीश और भाणिका। पर, आधुनिक एकांकी की कला केवल एक अंक वाले रूपकों-उपरूपकों के समान नहीं है। दूसरे, संस्कृत के इन रूपकों-उपरूपकों की कोई अविच्छिन्न परम्परा भी उपलब्ध नहीं होती। हिन्दी में तो उनका सर्वथा लोप ही है।

आधुनिक युग में भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने अवश्य इन रूपकों-उपरूपकों की कुछ विधाओं पर नाट्य-रचनाएं प्रस्तुत कीं। इसी कारण भारतेन्दु-युग से हिन्दी-एकांकी का प्रारम्भ स्वीकार नहीं किया जा सकता; भले ही उनकी नाट्य-रचनाओं की विषय-वस्तु तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध हो। आधुनिक जीवन को, संस्कृत के जिन रूपकों तथा उपरूपकों के आकार में भारतेन्दुयुगीन नाटक-कारों ने प्रस्तुत किया है; वे आधुनिक एकांकी नामक साहित्य-रूप की कोटि में नहीं रखे जा सकते।

अंग्रेजी नाट्य-साहित्य से भारतीय लेखकों का उत्तरोत्तर सम्पर्क बढ़ने के फलस्वरूप ही भारतीय साहित्य में एकांकी का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी

में एकांकी-रचना का श्रीगणेश, अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में (विशेष रूप से बंगला भाषा) कुछ बाद से होता है। यदि बीज या प्रारम्भिक स्वरूप का तर्क दिया जाए तो एकांकी की परम्परा ऋग्वेद से जोड़ने वाले उत्साही साहित्य-शास्त्रियों की हिन्दी में अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में कमी नहीं है।

वस्तुतः हिन्दी में आधुनिक एकांकी का प्रारम्भिक रूप यदि कही देखा जा सकता है तो वह श्री जयशंकर प्रसाद की 'एक घूंट' नामक नाट्य-रचना में; न कि भारतेन्दु तथा द्विवेदीयुगीन अनेक नाट्य-प्रयासों में; जो संस्कृत रूपकों-उपरूपकों की शैली पर लिखे गये हैं। 'एक घूंट' हिन्दी-साहित्य के इतिहास में युगान्तरकारी रचना है। यह वह स्थल है जहां प्राचीन संस्कृत नाट्य-प्रणाली के प्रभाव की क्षीणता तथा पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के प्रति तीव्र आकर्षण स्पष्ट दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हिन्दी-साहित्य में आधुनिक-युग का श्रीगणेश अवश्य होता है; पर एकांकी के क्षेत्र में आधुनिक-युग का सूत्रपात 'एक घूंट' से ही माना जाना युक्ति युक्त है।

'एक घूंट' का प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ। कुछ समीक्षक 'एक घूंट' से हिन्दी-एकांकी के विकास की दूसरी अवस्था का प्रारम्भ मानते हैं। ये दो चरण 'पूर्व-प्रसाद-युग' तथा 'प्रसाद युग' के नाम से अभिहित किये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं, 'एक घूंट' में समय और स्थान संकलन का निर्वाह, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, संघर्ष की तीव्रता, वातावरण की सृष्टि, संवादों की स्वाभाविकता आदि अनेक ऐसे तत्त्व द्रष्टव्य हैं; जो उसको पूर्व के सभी रूपकों-उपरूपकों से पृथक् कर स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करते हैं। यह सब होते हुए भी 'एक घूंट' का आकार विशुद्ध आधुनिक एकांकी जैसा नहीं है। इसी कारण 'एक घूंट' को हिन्दी-एकांकी का प्रारम्भिक रूप ही कहना उचित है।

'एक घूंट' के बाद हिन्दी में एकांकी-नाटकों की परम्परा बड़ी द्रुत गति से विकसित हुई। अनेक प्रतिभाशाली नाटककारों ने इस क्षेत्र में

बड़ी उत्कृष्ट कला-सम्पन्न कृतियों का निर्माण किया। आधुनिक ढंग के हिन्दी-एकांकी-नाटकों के जन्मदाताओं में श्री भुवनेश्वर प्रसाद और डा० रामकुमार वर्मा के नाम लिए जाते हैं। श्री भुवनेश्वर प्रसाद का सुप्रसिद्ध एकांकी-संग्रह 'कारवां' सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का पहला संग्रह 'पृथ्वीराज की आंखें' सन् १९३६ में निकला। पर, डा० रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' शीर्षक एकांकी सन् १९३० की रचना है। 'बादल की मृत्यु' हिन्दी का पहला एकांकी माना जाता है और इस प्रकार डा० रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिन्दी एकांकी के जन्मदाता होने का गौरव दिया जाता है। 'बादल की मृत्यु' कल्पना के आधार पर, पाश्चात्य शैली में लिखा गया काव्यात्मक एकांकी है। श्री भुवनेश्वर प्रसाद की एकांकी-कला पर बर्नार्ड शॉ का भी स्पष्ट प्रभाव है। इसके अतिरिक्त 'कारवां' के बाद उनके अन्य एकांकी-नाटकों के संग्रह प्रकाश में ही नहीं आये ! श्री भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी-क्षेत्र में योगदान विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण होते हुए भी परिमाण में अत्यल्प है। उसमें वैविध्य का भी अभाव है। अतः डा० रामकुमार वर्मा उनकी अपेक्षा अधिक समर्थ और सफल एकांकीकार ठहरते हैं। रचना-काल की दृष्टि से भी उनका एकांकी लेखन-प्रकाशन सन् १९३० से प्रारम्भ होता है तथा एकांकी-क्षेत्र में उनका योगदान भी परिमाण में पर्याप्त, विषय से वैविध्यपूर्ण तथा उत्कृष्टता एवं मौलिकता की दृष्टि से मूल्यवान है। इन कारणों को देखते हुए, डा० रामकुमार वर्मा ही आधुनिक हिन्दी-एकांकी के जनक माने जाने चाहिए।

वैसे तो हिन्दी-एकांकी लेखकों की एक बहुत लम्बी सूची है, पर प्रमुख एकांकीकारों में निम्नलिखित लेखक ही उल्लेखनीय हैं: डा० रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, जगदीशचन्द्र माथुर, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', वृन्दावनलाल वर्मा,[1] विष्णु प्रभाकर, डा० महेन्द्र

---

१. कनेर

भटनागर,[१] डा० लक्ष्मीनारायण लाल[२], सत्येन्द्र 'शरत्'[३], चिरंजीत[४], विनोद रस्तोगी[५], विश्वम्भर 'मानव'[६], कणादऋषि भटनागर,[७] हरिकृष्ण 'प्रेमी'[८], गिरिजाकुमार माथुर[९], भगवतशरण उपाध्याय[१०], भारत भूषण अग्रवाल[११], सिद्धनाथकुमार[१२], विमला लूथरा[१३], जयनाथ 'नलिन'[१४], मार्कण्डेय[१५], आदि । अन्य उल्लेखनीय एकांकी-लेखकों में गणेशप्रसाद द्विवेदी[१६], सूर्यकरण पारीख, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, गोविन्दवल्लभ पंत, सद्गुरुशरण अवस्थी[१७], एम० पी० खत्री[१८], शंभुदयाल सक्सेना, डा० प्रभाकर माचवे, आदि के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं । शैली और कला की शिथिलता के कारण उपर्युक्त एकांकी-लेखक हिन्दी-एकांकी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना सके । पंजाबी और अंग्रेजी से क्रमशः कर्तारसिंह दुग्गल ('कहानी कैसे बनी') और डी० एम० बोरगांवकर ('पन्द्रह अगस्त') हिन्दी में आये । इनके अतिरिक्त दर्जनों और भी ऐसे लेखक हैं; जिन्होंने हाथ आजमाने के लिए इक्के-दुक्के एकांकी लिखे; जिनमें कुछ सफल हैं तो कुछ अति साधारण । वस्तुतः इन साहित्यकारों की प्रतिभा साहित्य के अन्य रूपों में ही निखरी है । इस कोटि में उन सभी विख्यात तथा नये हस्ताक्षरों को सम्मिलित किया जा सकता है जो यदाकदा रंगमंचीय एकांकी व रेडियो-रूपक, फीचर, संगीत-रूपक आदि लिखते रहे हैं ।

---

१. अजय-आलोक २. नाटक बहुरंगी ३. तार के खम्भे ४. रंगारंग ५. काले कौए गोरे हंस ६. लहर और चट्टान ७. सफर के साथी, आज का ताजा अखबार ८. मंदिर, बादलों के पार ९. जनम कैद १०. कुछ फीचर, कुछ एकांकी ११. और खाई बढ़ती गई १२. सृष्टि की सांझ १३. पचपन का फेर १४. नवाबी सनक, हाथी के दांत १५. पत्थर और परछाइयां १६. सोहाग बिन्दी तथा अन्य नाटक (सन् १९३५) १७. दो एकांकी नाटक १८. सात एकांकी (सन् १९४९)

डा० रामकुमार वर्मा—

डा० रामकुमार वर्मा वर्तमान युग के अत्यधिक लोकप्रिय एवं सिद्धहस्त एकांकीकार हैं। हिन्दी-साहित्य में एकांकीकार के रूप में उनका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। 'बादल की मृत्यु', शीर्षक एकांकी (सन् १९३०) के बाद से निरन्तर वे विभिन्न प्रकार के एकांकी-नाटकों का सर्जन कर रहे हैं। उनके अनेक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं; जिनमें से अधिकांश अधोलिखित हैं: पृथ्वीराज की आंखें' (सन् १९३६), 'रेशमी टाई' (सन् १९४१), 'चारुमित्रा' (सन् १९४२), 'विभूति' (सन् १९४७), 'सप्त-किरण' (सन् १९४७), 'कौमुदी-महोत्सव' (सन् १९४८), 'रम्य रास' (सन् १९५०), 'ऋतुराज' (सन् १९५१), 'ध्रुवतारिका' (सन् १९५१), 'रजत-रश्मि' (सन् १९५२), 'दीपदान', 'कामकंदला' आदि।

भावुकता और बौद्धिकता का अद्भुत संयोग वर्माजी के नाटकों में मिलता है। वे स्वभाव से सरस और कल्पनाशील हैं; उन्होंने नैसर्गिक रूप से कवि-हृदय पाया है। गहन और विस्तृत अध्ययन के परिणाम-स्वरूप उनका विचारक और आलोचक भी बड़ा सजग, सतर्क और सशक्त है। उनके एकांकियों में जहां भावोल्लास और कल्पना का वैभव मिलता है वहां जीवन के प्रति आलोचक-बुद्धि भी पाई जाती है।

डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी-नाटकों की कला यद्यपि पाश्चात्य है तथापि उनका अन्तरंग, उनकी आत्मा नितांत भारतीय है। उन्होंने अपने नाटकों में जिन आदर्शों की स्थापना की है उन पर भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव है।

डा० रामकुमार वर्मा ने सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखे हैं, उनके सामाजिक नाटकों में मध्य-वर्गीय भद्र समाज के चित्र अधिक हैं। पौराणिक नाटकों में, प्राचीन कथानक को आधार मानकर उन्होंने वर्तमान समाज और व्यक्ति-मन की समस्याओं को सुल-झाने का प्रयत्न किया है। ऐतिहासिक नाटक उन्होंने कई दृष्टियों से

लिखे हैं। मात्र राष्ट्रीय गौरव की भावनाओं को जाग्रत करने के लिये नहीं; प्रत्युत ऐतिहासिक पात्रों के साथ उचित न्याय करने के निमित्त भी उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। वैसे, दोनों स्थितियों में व्यक्ति की चारित्रिक महत्ता को प्राथमिकता मिली है। स्व० जयशंकर 'प्रसाद' की तरह डा० रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकी नाटकों मे भी अनुसंधान-वृत्ति पाई जाती है। पर 'प्रसाद' जी और वर्माजी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण में किंचित् अन्तर है। 'विजय-पर्व' की भूमिका में डा० रामकुमार वर्मा 'प्रसाद' जी के इतिहास-प्रेम का विवेचन करते हुए लिखते हैं, "प्रसाद जी ने ऐतिहासिक तथ्यों में परिवर्तन भी किया है, किन्तु या तो वह नवीन अनुसंधानों (जो प्रामाणिक सिद्ध न हो सके) के आधार पर हैं, या कथा-वस्तु में चमत्कार लाने के लिए। 'प्रसाद' जी ने ऐतिहासिक घटनाओं को प्रधानता दी है; उनके साथ ही वे पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करना चाहते हैं। इसी कारण उनके नाटकों में रंगमंच के उपयुक्त वातावरण का अभाव है, उनके नाटकों में कल्पित पात्रों की संख्या अधिक है; जिससे कहीं-कहीं अस्वाभाविकता भी आ जाती है। समय का ध्यान उन्होंने नहीं रखा है; क्योंकि वे सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करना चाहते थे। इतिहास के मोह ने नाटकों को रंगमंच के अनुपयुक्त बना दिया है।" डा० रामकुमार वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों पर अनुसंधान-वृत्ति को इतना नहीं छाने दिया है कि वह उनकी नाटकीयता को ही दबाकर रख दे। नाटककार और इतिहासकार का एक संतुलित रूप उनमें मिलता है।

डा० रामकुमार वर्मा के नाटकों की सबसे बड़ी सफलता उनके अभिनेयत्व में है। उनके प्राय: सभी नाटक रंगमंच के अनुकूल हैं। अव्यवसायी रंगमंच के लिए उन्होंने अपने अधिकांश नाटक लिखे भी; जो महाविद्यालयों के रंगमंचों पर अभिनीत हुए और होते हैं। इसी से सम्बद्ध उनके नाटकों की एक विशेषता यह भी है कि उनके नाटक रेडियो और रंगमंच पर समान सफलता के साथ खेले जा सकते हैं।

डा० रामकुमार वर्मा के नाटकों की अन्य प्रमुख विशेषता भाषा सम्बन्धी है। वर्माजी के नाटक भाषा-सौंदर्य के बड़े धनी हैं। उनमें प्रयुक्त भाषा का स्वाभाविक साहित्यिक स्वरूप बड़ा ही आकर्षक होता है। इसके अतिरिक्त एक भी शब्द का प्रयोग निरर्थक नहीं मिलेगा।

व्यंग्य और हास्य-विनोद के एकांकी-नाटक भी वर्मा जी ने लिखे हैं। उनका व्यंग्य प्रभावशाली होता है। हास्य-विनोद की उक्तियां शिष्ट, संयत और आधुनिक होती हैं।

भुवनेश्वर प्रसाद—

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद बड़े प्रतिभाशाली समर्थ एकांकीकार हैं। यद्यपि उनके समय तक हिन्दी-एकांकी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही था; तथापि उन्होंने ऐसे एकांकी-नाटकों का सर्जन किया, जो आज हिन्दी-एकांकी के समुचित विकास के बाद भी अप्रतिम हैं; विशिष्ट हैं। हिन्दी-एकांकीकारों में भुवनेश्वर प्रसाद जी का व्यक्तित्व सबसे निराला है। उनके एकांकी-नाटकों में विषय और शिल्प का अत्याधुनिक रूप देखकर उनकी महान् प्रतिभा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। डा० नगेन्द्र का यह मत ध्यान देने योग्य है—'इस दृष्टि से यह एकांकीकार समय से कितना आगे है।'

श्री० भुवनेश्वर जी के छह एकांकियों का एक संकलन 'कारवां' सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था (३० मार्च १९३५)। इसमें निम्न-लिखित एकांकी संग्रहीत हैं—श्याम : एक वैवाहिक विडम्बना, एक साम्यहीन साम्यवादी, शैतान, प्रतिभा का विवाह, रोमांस : रोमांच और लाटरी। भुवनेश्वर जी के दो अन्य एकांकी अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं; जो सम्भवतः पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो सके। ये एकांकी हैं—'ऊसर' और 'स्ट्राइक'।

भुवनेश्वर जी के एकांकी-नाटकों के सम्बन्ध में अधिकांश समीक्षकों का यही मत है कि उन पर बर्नार्ड शॉ की विचारधारा का अत्यधिक

प्रभाव है। श्री० शिवदानसिंह चौहान को उनमें अनुकरण-प्रवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है!—"भुवनेश्वर बर्नार्ड शॉ की अन्तर्भेदी दृष्टि का अपने अन्दर विकास करके भारतीय जीवन और भारतीय मानस को अपने अनुभव से ढालकर मौलिक नहीं बना पाए, जिससे उनके नाटकों में मौलिकता की अपेक्षा अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है।" स्वयं भुवनेश्वर जी ने अपने एकांकी-संकलन 'कारवां' के 'प्रवेश' में बर्नार्ड शॉ के प्रभाव को स्वीकार किया है। उन्हीं के शब्दों में, "लिखने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे 'शैतान' के एक सीन में शॉ की छाया तनिक मुखर हो गई है। मैं इसे निर्विवाद स्वीकार करता हूं।" निश्चय ही, भुवनेश्वर जी की विचारधारा और अभिव्यक्ति प्रणाली पर बर्नार्ड शॉ का प्रभाव है; पर उसे अनुकरण की कोटि में रखना युक्तियुक्त नहीं।

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद जी की मान्यताएं व स्थापनाएं चौंका देने वाली हैं। इसी करण उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे नास्तिकता की शक्ति लेकर हिन्दी-साहित्य में आये। वे संदेहवादी हैं। उन्हें जीवन की किसी भी वस्तु में आस्था नहीं, आदि। 'कारवां' के 'प्रवेश' से उनके विचारों के कुछ अंश यहां प्रस्तुत किये जाते हैं:

"'आत्म-ज्ञान' मानव-जीवन की सबसे बड़ी समस्या है और यह तभी सम्भव है जब वह संसार से ऊपर उठ जाय, क्योंकि मानव-जीवन के चारों ओर सभी वस्तुएं एक समस्या हैं और सीमाएं।"

"प्रतिहिंसा और प्रेम में स्त्री पुरुष से अधिक 'आदिम' है—यही सारी समस्या का मूल है।"

"हिन्दू विवाह वेश्यागमन का पतित रूप है—ऐसा मैंने एक स्त्री को कहते सुना।"

"जिस भांति जीवन असार और निष्फल है उसी प्रकार कला भी। जीवन एक लजीली मुसकान है। कला एक शुष्क और कठोर हास्य।"

"कला में अश्लीलता के अर्थ हैं नग्न पवित्रता।"

भुवनेश्वर जी ने सामाजिक जीवन की जर्जर तथा थोथी नैतिक

मान्यताओं पर बड़े निर्मम प्रहार किये हैं। उनका व्यंग्य बड़ा तीखा होता है। वे आडम्बर के कट्टर शत्रु हैं। वास्तविकता को निरावरण कर उसे उन्होंने निःसंकोच समाज के सम्मुख रखा है। भुवनेश्वर जी का जीवन-दर्शन व दृष्टिकोण नकारात्मक है, पर उनकी शक्ति को सब स्वीकार करते हैं। डा० नगेन्द्र ने उनकी विचारधारा एवं एकांकियों के प्रतिपाद्य के सम्बन्ध में जैसा लिखा है, "लेकिन इस पतले-दुबले अपने में ही संकुचित आदमी में गजब की शक्ति है। उसके नकार में अपूर्व दृढ़ता है। इसलिए उसके नाटकों की समस्या सभी जगह तीखी है। 'मनुष्य अपनी बुद्धि की स्थूलता से वस्तुओं का वास्तविक रूप छिपाए हुए है। मानव को यही एक समस्या है।' और आप सच मानें लेखक ने इस स्थूलता को जैसे नाखूनों से चीरकर, जीवन की भीतरी चोट पर उंगली रख दी है। भुवनेश्वर की समस्या काम तक ही सीमित है लेकिन काम के साथ अर्थ भी लगा हुआ है।"

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद जी सही अर्थों में साहित्य-स्रष्टा की गरिमा से युक्त हैं। उनका अपना व्यक्तित्व है—सशक्त और निर्बन्ध। उनके एकांकियों में पाया जाने वाला मनोविज्ञान और व्यंग्य हिन्दी-एकांकी साहित्य में उनके महत्त्व और वैशिष्ट्य को प्रकट करता है।

जगदीशचन्द्र माथुर—

श्री० जगदीशचन्द्र माथुर जी के एकांकी एकांकी-नाट्य-कला की दृष्टि से बड़े सशक्त व सफल हैं। उनके प्रथम एकांकी 'भोर का तारा' का रचना-काल सन् १९३७ है। इसी नाम से उनके पांच एकांकी-नाटकों का संकलन सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ। ये एकांकी हैं : मकड़ी का जाला, कलिंग विजय, खंडहर, रीढ़ की हड्डी, और भोर का तारा। 'कलिंग विजय', "रीढ़ की हड्डी' और 'भोर का तारा' माथुर जी के बड़े लोकप्रिय एकांकी हैं। सन् १९५३ में उनका दूसरा एकांकी-संग्रह निकला—'ओ मेरे सपने'। इसमें उनके पांच नटखट-एकांकी संकलित

हैं—घोंसले, खिड़की की राह, कबूतरखाना, भाषण, और 'ओ मेरे सपने'। 'ओ मेरे सपने' के ये सभी एकांकी हास्य और व्यंग्य की रचनाएं हैं जिन्हें लेखक ने स्वयं 'नटखट' विशेषण दिया है। प्रथम संग्रह के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' के समान ही इन एकांकियों में भी लेखक ने वर्तमान समाज की असंगतियों पर बड़े सरस ढंग से प्रकाश डाला है। शिष्ट और सारगर्भित हास्य उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य है। भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भी सर्वत्र मिलेगा। श्री० जगदीशचन्द्र माथुर जी के एकांकी रंगमंच के सर्वथा योग्य हैं। हिन्दी-एकांकी के विकास में उनका योगदान विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है।

उदयशंकर भट्ट—

श्री० उदयशंकर भट्ट मुख्य रूप से कवि हैं, पर वे नाटककार के रूप में अधिक सफल हुए हैं। परिमाण और स्थायी महत्त्व, दोनों दृष्टियों से नाटक और एकांकी-नाटक के क्षेत्र में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय है। हिन्दी-एकांकी के विकास में उनका स्थान ऐतिहासिक ही नहीं; उसे उत्कृष्टता, समृद्धि एवं विविधता प्रदान करने वालों में है। एकांकीकार के रूप में उदयशंकर भट्ट आज भी आधुनिक हैं।

भट्ट जी के निम्नलिखित एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—अभिनव एकांकी नाटक, स्त्री का हृदय, समस्या का अंत, कालिदास, आदिम युग और अन्य नाटक (तीन नाटक), विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य, अंधकार और प्रकाश, धूम शिखा, पर्दे के पीछे। डा० कैलाशचंद्र भाटिया ने भट्ट जी के सन् १९२२–२३ में लिखित तथा अभिनीत दो एकांकियों का उल्लेख किया है—'असहयोग और स्वराज्य' एवं 'चित्तरंजन दास'। इन एकांकियों को उन्होंने भट्ट जी के एकांकीकार के विकास में भूमिका-रूप में ही ग्रहण किया है। इन एकांकियों का रचना-काल डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी 'बादल की मृत्यु' (सन् १९३०) से पूर्व का है। पर, भट्ट जी का प्रथम प्रकाशित एकांकी 'दुर्गा' है ('सरस्वती'

सन् १९३४)। सन् १९३६ में उनका दूसरा एकांकी 'एक ही कब्र में' प्रकाशित हुआ ('हंस'—दिसम्बर सन् १९३६) तथा सन् १९३८ में 'दस हजार' छपा; जिसने उन्हें एकांकी-क्षेत्र में विख्यात कर दिया। भट्ट जी के एकांकी साहित्य में हास्य-व्यंग्य, भाव-नाट्य, नाट्य-रूपक, प्रतीक रूपक, ध्वनि-रूपक आदि अनेक शिल्प-रूप मिलते हैं। विषय की दृष्टि से उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आदि प्रायः सभी प्रकार के एकांकियों का सृजन किया है।

एकांकी नाट्य-कला का निखरा-रूप उनकी रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है। घटना की तीव्रता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, पात्रानुकूल भाषा आदि की दृष्टि से भट्ट जी के एकांकी पूर्ण सफल हैं। उन्होंने अभी तक लगभग साठ एकांकी लिखे हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

श्री० उपेन्द्रनाथ 'अश्क' को 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पापी' आदि जैसे कुछ एकांकियों के कारण बहुत शीघ्र लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसमें संदेह नहीं, 'अश्क' जी उत्कृष्ट कोटि के कलाकार हैं! उनके अनेक एकांकी कला-सौष्ठव और भाव-वैभव से परिपूर्ण हैं।

उनका प्रथम एकांकी संग्रह 'देवताओं की छाया में'[1] सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। तदुपरान्त 'चरवाहे'[2], 'पक्का गाना'[3], 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ'[4], 'साहब को जुकाम है'[5], आदि अनेक संग्रह निकले।

---

१. लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, देवताओं की छाया में, . . .
२. चरवाहे, मैमूना, चुम्बक, चिलमन, चमत्कार, खिड़की, सूखी डाली।
३. पक्का गाना, तूफान से पहले, बहनें, नया पुराना, वेश्या, कामदा।
४. कहसा साव कइसो आया, बतसिया, सयाना मालिक, तौलिये, कस्बे के क्रिकेट-क्लब का उद्घाटन, मस्केबाजों का स्वर्ग।
५. किसकी बात ?, फादर्ज, घपले, साहब को जुकाम है, कुसुम का सपना।

'अश्क' जी ने पूर्ण नाटक भी लिखे हैं, पर उनमें उनका एकांकीकार ही अधिक अभिव्यक्त हुआ है। 'साहब को जुकाम है' नामक संग्रह में शिल्प सम्बन्धी नए प्रयोग मिलते हैं।

'अश्क' जी की मान्यता है कि वे जीवन के निर्माता नहीं, आलोचक हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन की अनेक असंगतियों, विकृतियों व विषमताओं को अपने एकांकियों में प्रस्तुत किया है। प्रहसन लिखने में भी वे सिद्धहस्त हैं। उनका हास्य बड़ा रोचक, तथा व्यंग्य तीखा होता है। कवि होने के कारण 'अश्क' के एकांकी भावावेश से परिपूर्ण हैं। वे दर्शकों को प्रभावित करते हैं। मंच-प्रभाव की दृष्टि से उनकी अधिकांश रचनाएं सफल हैं।

सेठ गोविन्ददास--

सेठ गोविन्ददास नाटककार के रूप में विख्यात हैं। परिमाण की दृष्टि से सेठ गोविन्ददास जी ने हिन्दी में सर्वाधिक नाटक लिखे हैं। एकांकी के क्षेत्र में भी उनका योगदान कोई कम नहीं है। वे अभी तक लगभग साठ एकांकी लिख चुके हैं। कुछ प्रकाशित संग्रहों के नाम हैं--पंचभूत, एकादशी, स्पर्द्धा, सप्त-रश्मि (१९४१), अष्टदल (१९४४) आदि। 'चतुष्पथ' उनके एकपात्री नाटकों का संकलन है। 'गोविन्ददास ग्रन्थावली' के कई भागों में, उनकी सभी नाट्य-कृतियां संग्रहीत की गई हैं।

सेठ गोविन्ददास जी ने प्रायः सभी प्रकार के एकांकी लिखे हैं--सामाजिक, समस्या-प्रधान, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि। हास्य व व्यंग्य से परिपूर्ण कुछ प्रहसन भी उनके लिखे मिलते हैं। पर, सेठ गोविन्ददास जी का एकांकी-क्षेत्र में महत्त्व उनके द्वारा लिखे गये एकपात्री नाटकों के कारण है। ऐसे कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं--षट् दर्शन, प्रलय और सृष्टि, अलबेला, सच्चा जीवन, तथा शाप

और वर। ये रूपक मोनोड्रामा की आधुनिक रचना-शैली पर लिखे गये हैं; संस्कृत के आकाश-भाषित के अनुकरण पर नहीं। वे मात्र 'स्वगत' नहीं। उनमें सम्बोधन-शैलीका आश्रय लिया गया है। पात्र किसी-न-किसी को सम्बोधित करके ही अपने भाव व विचार व्यक्त करता है। धाराप्रवाह भावावेश की अभिव्यक्ति सेठ जी के मोनोड्रामाओं की प्रमुख विशेषता है। भाषा की सहजता भी उनमें द्रष्टव्य है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—

श्री० लक्ष्मीनारायण मिश्र श्रेष्ठ नाटककारों में से हैं। हिन्दी में समस्यामूलक नाटकों का समावेश मिश्र जी के द्वारा ही हुआ। उन्होंने एकांकी भी लिखे हैं। उनके प्रकाशित एकांकी-संग्रह हैं--'अशोक वन'[१] (सन् १९५०), 'प्रलय के पंख पर'[२] (सन् १९५१), 'कावेरी में कमल'[३], 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी'[४] (सन् १९५७)। मिश्र जी का दृष्टिकोण सांस्कृतिक, पर पुनरुत्थानवादी है। वैदिक धर्म में उनकी आस्था है। बौद्धों के प्रति वे उदार नहीं हैं। उनकी रचनाओं में प्रतिक्रियावादी तत्त्व एवं साम्प्रदायिकता मिलती है। वर्तमान युग में ऐसी विचारधारा समर्थन नहीं पा सकती। इसमें सन्देह नहीं लक्ष्मीनारायण मिश्र जी की एकांकी-कला आकर्षक तथा प्रौढ़ है।

---

१. अशोक वन, कौशम्बी, विदिशा, भविष्य का गर्व, दशाश्वमेध।
२. प्रलय के पंख पर, बालू से तेल, धरती के नीचे, मेंड़ तोड़ दो, गंगा की लहरें, चकाचौंध।
३. कावेरी में कमल, देवगिरि में ग्रहण, पत्थर में प्राण।
४. भगवान मनु, विधायक पराशर, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, आचार्य शंकर।

भगवतीचरण वर्मा—

श्री० भगवतीचरण वर्मा ने अपने हास्य-व्यंग्य के लोकप्रिय एकांकी 'सबसे बड़ा आदमी' के कारण हिन्दी एकांकी-साहित्य में स्थान बना लिया है। एक ही रचना में हास्य और व्यंग्य दोनों का सफल निर्वाह 'सबसे बड़ा आदमी' की विशेषता है। भगवतीचरण वर्मा के ऐसे एकांकी मात्र हास्य-झलकियां नहीं; उनसे वर्तमान समाज-व्यवस्था तथा आर्थिक-प्रणाली पर भी समुचित प्रकाश पड़ता है। उनका एक एकांकी-संग्रह 'बुझता दीपक' प्रकाशित हुआ है; जिसमें चार एकांकी संकलित हैं—दो कलाकार (१९४०), सबसे बड़ा आदमी (१९३६), चौपाल में (१९४८) और बुझता दीपक (१९४९)। इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा जी ने और भी कई एकांकी लिखे हैं। स्वाभाविकता उनके एकांकियों की प्रमुख विशेषता है। पात्रों की नाटकीय भंगिमाएं भी उनकी रचनाओं में बड़ी सहज और आकर्षक हैं।

विष्णु प्रभाकर—

ध्वनि-रूपक लिखने में विष्णु प्रभाकर सिद्धहस्त हैं। उन्होंने हिन्दी-एकांकी के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं। विष्णु प्रभाकरजी के प्रकाशित एकांकी-संग्रह हैं—'इंसान', 'क्या वह दोषी था', 'प्रकाश और परछाईं' (सन् १९५६), 'बारह एकांकी', 'दस बजे रात' आदि। विष्णु प्रभाकर जी के सामाजिक एकांकी बड़े प्रभावशाली हैं। पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर वे मानव-आदर्शों की प्रतिष्ठा करते हैं। उनके एकांकियों में मानवता की अभिव्यक्ति बड़े कलात्मक रूप में हुई है। 'उपचेतना का छल', 'रक्तचंदन', 'सीमारेखा' आदि उनके प्रसिद्ध एकांकी हैं, जो उनकी नाट्य-कला का भली-भांति परिचय देते हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल—

अभिनव शिल्प और आधुनिकता बोध से समृद्ध नाटक डा० लक्ष्मी-

नारायण लाल ने लिखे हैं। 'अंधा कुआं', 'मादा कैक्टस', 'सुन्दर रस', 'सूखा सरोवर', 'दर्पन', 'रातरानी' और 'नाटक तोता-मैना' उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल जी ने एकांकी भी पर्याप्त लिखे हैं जो 'ताजमहल के आंसू', 'पर्वत के पीछे', 'नाटक बहुरूपी' और 'नाटक बहुरंगी' नामक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। 'रंगमंच और नाटक की भूमिका' शीर्षक से उन्होंने एक सैद्धान्तिक ग्रंथ भी लिखा है। आप दिल्ली स्थित 'संवाद' नामक नाट्य-संस्थान के संचालक भी हैं। जटिल मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को रूपायित करने में डा० लक्ष्मीनारायण लाल अप्रतिम हैं।

इसमें संदेह नहीं, हिन्दी-एकांकी का विकास द्रुत गति से हो रहा है। वह विषय-वैविध्य की दृष्टि से सम्पन्न और शिल्प-रूपों से समृद्ध होता जा रहा है। 'आकाशवाणी' से उसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। अधिकांश ध्वनि-रूपक रंगमंच पर सुगमता से अभिनीत होने योग्य हैं—यदि रचना में तंत्र सम्बन्धी सूक्ष्म तथा विशिष्ट निर्देश नहीं हैं तो। रंगमंचीय एकांकी और ध्वनि-रूपक के शिल्प में तो अंतर, निश्चय ही, बना रहेगा, क्योंकि उनको प्रस्तुत करने के ढंग भिन्न हैं। विषय की दृष्टि से, सामाजिक[1], राजनीतिक[2], सांस्कृतिक[3], पौराणिक[4], ऐतिहासिक[5] दार्शनिक[6], राष्ट्रीय[7], मनोविश्लेषणमूलक[8], यथार्थिक[9], चारित्रिक[10] द्वन्द्वप्रधान

---

१. दस मिनट (डा० रामकुमार वर्मा), रीढ़ की हड्डी (जगदीशचंद्र माथुर) २. हंगर स्ट्राइक (सेठ गोविन्ददास) ३. प्रतिशोध (डा० रामकुमार वर्मा) ४. मनु-मानव, आदिम युग (उदशंकर भट्ट), ५. पृथ्वीराज की आंखें (डा० रामकुमार वर्मा), गण-नायक विक्रम (डा० महेन्द्र भटनागर) ६. अंधकार (डा० रामकुमार वर्मा), टकराहट (जैनेन्द्र कुमार) ७. मां-बाप (विष्णु प्रभाकर) ८. ऊसर (भुवनेश्वर प्रसाद) पापी ('अश्क') ९. सुदामा के तन्दुल (सेठ गोविन्ददास) १०. चारुमित्रा, उत्सर्ग (डा० रामकुमार वर्मा), धोकेबाज (सेठ गोविन्ददास)

आदि एकांकी लिखे जा रहे हैं। शिल्प-रूपों की दृष्टि से प्रहसन[1], हास्य और व्यंग्य मूलक[2], समस्या-एकांकी[3], कल्पना मूलक[4], सोद्देश्य एकांकी[5], शिल्पमूलक[6], लक्षण या सूचनामूलक[7], प्रतीक-रूपक[8], ध्वनिरूपक[9], रेडियो-एकांकी[10], एक पात्रीय एकांकी[11], जनपदीय एकांकी[12], दुःखान्त[13], संगीत-रूपक[14] आदि अनेक प्रकार उपलब्ध हैं। इसमें सन्देह नहीं, आज हिन्दी-नाटककारों की, एकांकी-रचना में विशेष रुचि पाई जाती है; जो वर्तमान युग की आवश्यकताओं को देखते हुए उचित ही है।

——

१. एक तोले अफीम की कीमत (डा० रामकुमार वर्मा), दो-अतिथि, वर-निर्वाचन (उदयशंकर भट्ट) २. दो कलाकार, सबसे बड़ा आदमी (भगवतीचरण वर्मा) ३. रजनी की रात (डा० रामकुमार वर्मा), सन्देह का अन्त (भगवतीचरण वर्मा) ४. बादल की मृत्यु (डा० रामकुमार वर्मा) ५. जाति-उत्थान (सेठ गोविन्ददास) ६. ऊसर (भुवनेश्वर प्रसाद) ७. मर्मी कवि कबीर, देवी अहिल्याबाई (डा० महेन्द्र भटनागर) ८. जीवन (उदयशंकर भट्ट) ९. प्रतिशोध (डा० रामकुमार वर्मा) १०. रक्त-चंदन (विष्णु प्रभाकर) ११. प्रलय और सृष्टि (सेठ गोविन्ददास) १२. राहुल सांकृत्यायन के भोजपुरी में लिखित एकांकी १३. विवाह के दिन ('अश्क') १४. शुभ्र पुरुष (सुमित्रानंदन पंत), कुंवर कन्हैया (डा० महेन्द्र भटनागर)।

दीप-दान

रामकुमार वर्मा

पात्र

कुँवर उदयसिंह :	चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा सांगा का सबसे छोटा पुत्र। राज्य का उत्तराधिकारी।
पन्ना (धाय माँ) :	कुँवर उदयसिंह का संरक्षण करने वाली धाय।
सोना :	रावल सरूप सिंह की लड़की।
चन्दन :	धाय माँ का पुत्र।
सामली :	अन्तःपुर की परिचारिका।
कीरत :	जूठी पत्तल उठाने वाला बारी।
बनबीर :	महाराणा सांगा के भाई पृथ्वीराज का दासी-पुत्र।

काल—सन् १५३६ ई०

समय—रात्रि का दूसरा प्रहर।

स्थान—कुँवर उदयसिंह का कक्ष।

निर्देश—पूरी सजावट है। दरवाजों पर रेशमी परदे पड़े हैं। एक पार्श्व में उदयसिंह की शैया है। सिरहाने पन्ना (धाय माँ) के बैठने का स्थान है।

(नेपथ्य में नारियों की सम्मिलित नृत्य-ध्वनि। मृदंग और कड़खे की रमक। फिर नारियों का सम्मिलित कण्ठ से गान।)

कंकण बंधन रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन विहाड़ा त्याग रा, कांई रंक कांई राव॥

कांई रंक कांई राव॥
कांई रंक कांई राव॥
(फिर नृत्य की ध्वनि)

धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़ंता ताव।
ए तीनहु दिन मरण रा, कांई रंक कांई राव॥

कांई रंक कांई राव॥
कांई रंक कांई राव॥

(यह संगीत नेपथ्य से धीरे-धीरे हलका सुनाई पड़ता है।)

उदयसिंह : (दौड़ता हुआ आता है, पुकारता है) धाय माँ, धाय माँ! (कोई उत्तर नहीं मिलता। अपने-आप) धाय माँ कहाँ हैं! (फिर पुकार कर) धाय माँ!

पन्ना : **(भीतर से आती हुई)** क्या है, कुंवर ! **(देखकर)** अरे, सांझ हो गई, और तुमने अभी तक अपनी तलवार म्यान में नहीं रक्खी ?

उदयसिंह : धाय मां, देखो न कितनी सुन्दर-सुन्दर लड़कियां नाच रही हैं। गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं। चलो न ! देखो न !

पन्ना : मैं नहीं देख सकूंगी, लाल !

उदयसिंह : नहीं धाय मां, चलो न। थोड़ी देर के लिए चलो न।

पन्ना : नहीं कुंवर, मुझे इस समय नाच देखना अच्छा नहीं लगता।

उदयसिंह : क्यों नहीं अच्छा लगता ? मैं तो उन्हें बड़ी देर तक देखता रहा। और वे भी ... वे भी तो मुझे बड़ी देर तक देखती रहीं, धाय मां ! मैं कितना अच्छा हूं, धाय मां !

पन्ना : बहुत अच्छे हो। तुम तो चित्तौड़ के सूरज हो। महाराणा सांगा जी के छोटे कुंवर। सूरज की तरह तुम्हारा उदय हुआ है। तभी तो तुम्हारा नाम कुंवर उदयसिंह रक्खा गया है।

उदयसिंह : **(हंसकर)** अच्छा। यह बात है ! पर क्या रात में भी सूरज का उदय होता है। मैं तो रात में भी हंसता खेलता रहता हूं।

पन्ना : दिन में तो तुम चित्तौड़ के सूरज हो, कुंवर ! और रात में तुम राजवंश के दीपक हो। महाराणा सांगा के कुल दीपक।

उदयसिंह : कुल-दीपक ! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय मां ! वे नाचने वाली लड़कियां तुलजा भवानी की पूजा में दीप-दान करके ही नाच रही हैं। वे दीपक छोटे-से कुंड में कैसे नाचते हैं, धाय मां ! **(मचले हुए स्वर में)** चलो न, धाय मां ! तुम उनका दीप-दान देख लो। जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं उसी तरह वे भी नाच रही हैं।

पन्ना : मैं इस समय कुछ नहीं देखूंगी, कुंवर !

उदयसिंह : (रूठ कर) तो जाओ, मैं भी नहीं देखूंगा। मैं उदयसिंह भी नहीं बनूंगा, और कुल-दीपक भी नहीं। कुछ नहीं बनूंगा।

पन्ना : रूठ गये। कुंवर, रूठने से राजवंश नहीं चलते, जाओ! विश्राम करो। देखो, तुम्हारे कपड़ों पर धूल छा रही है। दिन भर तुम तलवार का खेल खेलते रहे, थक गये होगे। जाओ, शैया पर सो जाओ। मैं तुम्हारी तलवार अलग रख दूंगी।

उदयसिंह : (रूठे हुए स्वर में) तब तो मैं तलवार के साथ ही सो जाऊंगा।

पन्ना : अभी वह समय नहीं आया, कुंवर! चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें कई दिनों तक तलवार के साथ ही सोना पड़ेगा।

उदयसिंह : (रूखे स्वर में) तुम्हें तलवार से डर लगता है? जो बार-बार तलवार रखने को कहती हो?

पन्ना : तलवार से डर! चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुंवर! जैसे लता में फूल खिलते हैं न, वैसे ही यहां वीरों के हाथों में तलवार खिलती है .... तलवार चमकती है।

उदयसिंह : (उसी तरह रूखे स्वर में) अब मेरा मन बहलाने लगी! तुम नाच देखने नहीं चलती तो मैं ही अकेला चला जाऊंगा। मैं जाता हूं। (जाने को उद्यत होता है।)

पन्ना : नहीं कुंवर! तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी समय भी तुम्हें डंस सकते हैं।

उदयसिंह : सर्प! कैसे सर्प?

पन्ना : तुम नहीं समझोगे, कुंवर! जाकर सो जाओ। थक गये होगे। भोजन के लिए मैं जगा लूंगी।

उदयसिंह : नहीं मां, आज न मैं भोजन करूंगा और न अपनी शैया पर ही सोऊंगा। (प्रस्थान के लिए उद्यत)

पन्ना : (रोकते हुए) सुनो, सुनो कुंवर?

(उदयसिंह का प्रस्थान)

पन्ना : चले गये ! कुंवर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है। मना लूंगी। नाच, गान, दीप-दान ! इसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी ? चित्तौड़ में यह बहुत हो चुका। बहुत हो चुका ! और अब तो बनवीर का राज्य है।

(नूपुर-नाद करते हुए एक किशोरी का प्रवेश)

किशोरी : धाय मां को प्रणाम।

पन्ना : कौन ?

किशोरी : मैं हूं, सोना ! रावल सरूप सिंह की लड़की। कुंवर जी कहां हैं !

पन्ना : वे थक गये हैं। सोना चाहते हैं।

सोना : सोना चाहते हैं। तो मैं भी तो सोना हूं !

(अट्टहास)

पन्ना : चुप रह सोना ! कुंवर जी रूठ कर सोने चले गये हैं। तुम लोग कुंवर को नाच-गाने की ओर खींचना चाहती हो !

सोना : क्या तुलजा भवानी के सामने नाचना कोई बुरी बात है ? आज हम लोगों ने दीप-दान किया और मनभर कर नाचा। यों (नाचती है।) कुंवर जी भी तो बड़ी देर तक हमारा नाच देखते रहे ! मैं भी उनको देख कर बहुत नाची। उनको हमारा नाच बहुत अच्छा लगा। बहुत अच्छा ! देखो, पैरों की यह ताल (नूपुर की झनकार)

पन्ना : बस बस, सोना ! अगर तू रावल जी की लड़की न होती तो . . . .

सोना : कटार भोंक देतीं ! कटार ! (अट्टहास करती है।) धाय मां, तुमने उदयसिंह के सामने तो अपने पुत्र चन्दन को भी भुला दिया। तुम्हारे मातृत्व में उदयसिंह ऐसे समाये हैं, जैसे कटार को अपने हृदय में रखने के लिए म्यान ने अपना हृदय खोखला कर दिया हो ! (हंसती है) खोखला !!

पन्ना : यह कविता रहने दे ! जानती नहीं बनवीर का राज्य है ?

सोना : ओहो, बनवीर ! उन्हें श्री महाराजा बनवीर कहो। बागड़ के इलाके से वे हाथी-घोड़ों की झूल लाये थे . . . . हां, झूल ! इतनी बड़ी। हमारे लिए भी तो वे एक रेशम की झूल लाये थे। उन्हें सिर से ओढ़ कर नाचने से ऐसा लगता था, ऐसा लगता था, जैसे मकड़ी के जाले के आर-पार चन्द्रमा की किरणें थिरक रही हैं। हां . . . . .

पन्ना : बहुत नाचती हो, बनवीर की तुम पर बड़ी कृपा है !

सोना : द्रौपदी के चीर की तरह ! आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे बुलाया और कहा . . . . धाय मां ! तुम बुरा तो नहीं मानोगी ?

पन्ना : मैं क्यों बुरा मानूंगी ?

सोना : उन्होंने कहा, महल में धाय मां अरावली पहाड़ बन कर बैठ गई है। अरावली पहाड़। (हंसती है) तो तुम लोग बनास नदी बन कर बहो न ! खूब नाचो, गाओ। यों आज कोई उत्सव का दिन नहीं था, फिर भी उन्होंने कहा, मेरे बनवाये हुए मयूर पक्ष कुंड में दीप-दान करो। मालूम हो, जैसे भव सागर में आत्माएं तैर रही हैं, या जैसे मेघ पानी-पानी हो गये हों और बिजलियां टुकड़े-टुकड़े हो गई हों !

पन्ना : बड़ी उमंग में हो आज ?

सोना : दीपकों के साथ उमंगें भी लौ देने लगी हैं, धाय मां ! सारा जीवन ही एक दीपावली का त्योहार बन गया है।

पन्ना : तो यही त्योहार मना रही हो तुम ?

सोना : मैं ही क्या, सारे नगर-निवासी यह त्योहार मना रहे हैं। नहीं मना रही हो, तो तुम ! धाय मां, तुम !! पहाड़ बनने से क्या होगा ? राजमहल पर बोझ बन कर रह जाओगी, बोझ ! और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, पत्थर भी ! आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों

की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी। गीत और नाच, धाय मां ! गीत और नाच !! जैसे सुख और सुहाग एक साथ हंस रहा हो ! और जब दीप-दान का दीपक अपने मस्तक पर लेकर चलोगी, धाय मां, तो ज्ञात होगा, धाय मां, जैसे शुक्र तारे को मस्तक पर रखकर उषा आ रही है।

पन्ना : वनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है, सोना !

सोना : धाय मां ! पागल कौन नहीं है ? महाराणा विक्रमादित्य अपने सात हजार पहलवानों के साथ पागल हैं। मल्ल-क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है ! महाराज वनवीर, महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता से पागल हैं। वे विक्रमादित्य के अन्तःपुर में प्रलाप करते हैं। यह आनन्द ही उनका पागलपन है ! सारा नगर आज के त्योहार में पागल है। तुम कुंवर उदयसिंह के स्नेह में पागल हो और मैं ? (हंसकर) मेरी कुछ न पूछो, धाय मां ! मैं तो इन सबके पागलपन में पागल हूं ! तुम चाहे जो कहो ! हां, तो कुंवर उदयसिंह कहां हैं ?

पन्ना : कुंवर उदयसिंह को छोड़ो, सोना ! वे बहुत थक गये हैं। अब सो रहे होंगे। तुम जाओ। यहां कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाय !

सोना : मेरा पागलपन ? धाय मां, पागलपन कहीं कम होता है ? पहाड़ बढ़ कर कभी छोटे हुए हैं ? नदियां आगे बढ़ कर कभी लौटी हैं ? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं ? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़तीं हो तो सिर्फ तुम। सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा। मैं रावल की बेटी हूं, शायद सामन्त की बेटी बनूं, शायद महाराज की बेटी बनूं ! कुछ बढ़ कर ही बनूंगी। और तुम धाय मां ? सिर्फ धाय मां ही रहोगी !

पन्ना : सोना ! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूं अच्छी हूं। राजसेवा में जीवन जा रहा है---यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना : भाग्य ! भाग्य तो सबके होता है, धाय मां ! ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का संदेश पहले ही पहुंचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। और जब मेरे पैर रुक जाते हैं, तो ये मौन हो जाते हैं। वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबके होता है, धाय मां ! तुम नगहे के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो ! मैं कौन होती हूं बीच में बोलने वाली !

पन्ना : तो क्या मेरे उत्सव में जाने और न जाने का सम्बन्ध बनवीर की इच्छा से है ?

सोना : फूल कुछ कहता है ? अपनी सुगन्धि भेज देता है। दीपक कोई संदेश भेजता है ? पतंगे आप-से-आप आ जाते हैं।

पन्ना : मैं जानती हूं इस दीपक की आग में मैं जल जाऊंगी !

सोना : तो कुंवर को भेज देतीं। उनको तो कोई आग न छू सकती ?

पन्ना : कैसे भेज देती ? इतने आदमियों के बीच उसे कैसे भेज देती ? महाराज सांगा के वंश के एक वही तो उजाले हैं। महाराणा रत्नसिंह तीन ही वर्ष राज करके सूर्य लोक चले गये। विक्रमादित्य भी बनवीर की कूटनीति से अधिक दिनों तक . . . .

सोना : धाय मां, तुम विद्रोह की बातें करती हो।

पन्ना : आंधी में आग की लपट तेज ही होती है, सोना ! तुम भी उसी आंधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नुपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीत की लहरों को निगल जायेगा। यह सुख और सुहाग पास-पास उठे हुए दो बुलबुलों की तरह बिना सूचना दिये फूट जायेगा।

चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहां आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियां नहीं !

सोना : (क्रोध से चीख कर) धाय मां !

पन्ना : तोड़ो ये नूपुर ! बनवीर की आग की कलियो ! तुम्हारे पीछे काली राख है---यह मत भूल जाना। ये अतृप्त इच्छाओं की चिनगारियां अधजली होकर चिटकेंगी और चित्तौड़ की आंखों में किरकिरी बनकर कसकेंगी। यह आग की ज्वाला हवन-कुंड को भी जला देगी, सोना ! इसे बुझा दो। तुम्हारे इस त्योहार से चित्तौड़ परिचित नहीं है। यहां का त्योहार आत्म-बलिदान है। यहां का गीत मातृभूमि की वन्दना का गीत है। उसे सुनो और समझो।

सोना : (शान्त स्वर में) समझ लिया, धाय मां !

पन्ना : तो यहां से जाओ। देखना, इस त्योहार के पीछे कोई कूटनीति न हो। बनवीर से पूछना, इस रास-रंग का क्या अर्थ है ?

सोना : वह मेरी समझ में नहीं आवेगा, धाय मां !

पन्ना : तो जाओ, दिशाओं की तरह उसकी हंसी में डूबी रहो। तुमसे प्रतिध्वनि भी न निकल सके।

(सोना का धीरे-धीरे प्रस्थान। उसके नूपुर धीरे-धीरे बजते हुए दूर तक सुन पड़ते हैं।)

पन्ना : अंधेरी रात ! यह रास-रंग !! नगर के सब लोगों का जमाव !! कुंवर उदयसिंह के लिए बुलावा !!! यह सब क्या है ?

(चन्दन का प्रवेश)

चन्दन : (दूर से पुकारते हुए) मां ! मां !

पन्ना : क्या, मेरे लाल ?

चन्दन : मां ! इतनी कविता बनाने वाली, इतने गीत गाने वाली, इतना नाचने वाली सोना, धीरे-धीरे कैसे जा रही थी ?

गुम-सुम, जैसे किसी ने सांप का जहर खींच लिया हो !

पन्ना : सांप का जहर ?

चन्दन : हां जहरीली तो है ही। जब बोलती है तो बातों की ऐसी चोट करती है कि कुछ कहते ही नहीं बनता। वह तो हमेशा उछलती-कूदती जाती थी। आज तो जैसे उसके पैर में मोच आ गई हो।

पन्ना : आई थी कुंवर को बुलाने, अपना नाच दिखलाने। मैंने कुंवर को नहीं जाने दिया तो बुरा मान गई !

चन्दन : हां, मां, कुछ दिनों से कुंवर हमारे साथ नहीं खेलते, इसी के यहां चले जाते हैं। मैं भी उनके पीछे जाता हूं। वह कुंवर की ओर देखती है और कुंवर उसकी ओर देखते हैं। कहते तो कुछ नहीं, बस देखते हैं। पता नहीं इस तरह देखने से क्या होता है। देखने से क्या होता है, मां !

पन्ना : कुछ नहीं, लोग देवता के दर्शन करते हैं न। तो उन्हें आनन्द मिलता है। मैं कुंवर से कह दूंगी कि वे भी देवता की तरफ देखा करें, सोना की तरफ नहीं।

चन्दन : तो सोना बुरा न मान जायगी, मां !

पन्ना : लोगों के बुरा मानने से क्या होता है ! भगवान् को बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम तो किसी को नहीं देखते, चन्दन ?

चन्दन : देखता हूं मां ! पहाड़ी खरगोश को। ओह, कैसी छलांग भरता है, मां। जैसे उसमें बिजली भरी हो। पलक मारते ही पहाड़ की इस चोटी से उस चोटी पर पहुंच जाता है ! पहाड़ी खरगोश से बढ़ कर और कौन-सी चीज है, मां ! उसे देखकर फिर किसी को देखने की इच्छा नहीं होती !

पन्ना : पहाड़ी खरगोश का क्या कहना है, चन्दन ! उसी तरह वीरों को भी धावा करना चाहिए।

चन्दन : हां, मैं भी उतनी ही तेजी से दौड़ सकूंगा। जमीन से आसमान तक।

पन्ना : जमीन से आसमान तक कोई नहीं दौड़ता। हां, तू नाच देखने तो नहीं गया था ?

चन्दन : मां, धावा करने वाले कहीं नाच देखते हैं ! मुझे तो वह अच्छा नहीं लगता। हां, कुंवर को अच्छा लगता है ! कुंवर कहां है, मां !

पन्ना : रूठ कर सो गये हैं।

चन्दन : क्यों, भोजन करने में ! उन्होंने भोजन कर लिया ?

पन्ना : नहीं। पर कुंवर तुम्हारे उठाने से न उठेंगे। तुम भोजन कर लो। मैं थोड़ी देर बाद उन्हें उठा कर, बहला कर भोजन करा दूंगी।

चन्दन : मुझे अकेले भोजन करना अच्छा न लगेगा, मां।

पन्ना : भोजन कर लो, मेरे चन्दन ! मेरे लाल ! सज्जा ने तुम्हारे लिए अच्छा भोजन बनाया है। वह तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हुई भोजन करा देगी। मैं भी अभी आती हूं। तुम्हारी माला टूट गई थी, उसी को ठीक कर रही हूं। बस, थोड़े दाने और रह गये हैं।

चन्दन : मां, कल कुंवर की माला भी ठीक कर देना। वह भी टूट रही है। सोना ने उसे पकड़ कर खींच दिया था।

पन्ना : अच्छा चन्दन ! वह भी ठीक कर दूंगी।

(चन्दन का प्रस्थान)

पन्ना : **(सोचते हुए)** मेरा भोला लाल। जब पूछा कि तुम तो किसी को नहीं देखते तो कहता है देखता हूं, मां ! पहाड़ी खरगोश को। **(हंसते हुए)** पहाड़ी खरगोश को ! वाह रे मेरे चन्दन ! कहता है, धावा करनेवाले कहीं नाच

देखते हैं ! वह तो दौड़ते हैं जमीन से आसमान तक .... जमीन से आसमान तक ।

(एकाएक घर की कुछ चीजों के गिरने की धमक । शीघ्रता से सामली का प्रवेश)

सामली : (चीखकर पुकारती हुई) धाय मां ! धाय मां !

पन्ना : कौन, कौन सामली ?

सामली : (बिलखते हुए) धाय मां, धाय मां । कुंवर कहां हैं ? कुंवरजी कहां हैं ?

पन्ना : क्यों, कुंवरजी को क्या हुआ ?

सामली : उनका जीवन संकट में है ।

पन्ना : कहां ! कैसे ? यह तुम क्या कह रही हो ?

सामली : उनका जीवन बचाओ । धाय मां !

पन्ना : (चीख कर) सामली । कहां हैं कुंवरजी ।

(अन्दर की तरफ भागती है ।)

सामली : (बिलखते हुए) हाय ! सर्वनाश हो रहा है ! क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे ? क्या चित्तौड़ के साके का यही फल होना था ? हाय ! क्या हो रहा है ! तुलजा भवानी ! तुम चित्तौड़ की देवी हो । कैसे कहूं कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही । मेवाड़ का भाग्य ....

पन्ना : (फिर प्रवेश कर) सो रहा है । मेरा कुंवर सो रहा है । कहीं तो कुछ नहीं हुआ । कुंवर जी रूठ गये थे, वे तलवार लिये हुए भूमि पर ही सो गये । तलवार उनके हाथों से खिसक गई है पर वे तो शान्ति से सो रहे हैं । मेरे कुंवर को कुछ नहीं हुआ ।

सामली : कुंवर अच्छे हैं । तुलजा भवानी कुशल करें ! पर धाय मां ! महाराणा विक्रमादित्यजी की हत्या हो गई !

पन्ना : (चीखकर) महाराणा की हत्या हो गई ? किसने की ?

सामली : बनवीर ने । महाराणा सो रहे थे । उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी ।

पन्ना : **(चौंककर)** हाय ! महाराणा विक्रमादित्यजी ! यह मैं पहले ही जानती थी ! **(सिसकने लगती है ।)**

सामली : बनवीर ने नगर भर में आज नाच-गान का त्योहार मनवाया जिससे नगर-निवासियों का ध्यान नाच-रंग में ही रहे । मौका देखकर वह राजमहल गया । अन्तःपुर में वह आता-जाता था । किसी ने रोका नहीं । उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी ! **(सिसकियां लेने लगती है ।)**

पन्ना : **(स्थिर होकर)** आज कुसमय नाच-रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी । इसीलिए मैंने कुंवर को वहां जाने से रोक दिया था । संभव था कि कुंवर वहां जाते और बनवीर अपने सहायकों से कोई कांड रच देता ।

सामली : इसीलिए मैं दौड़ आयी हूं, धाय मां ! लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुंवर उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझ कर जीवित रहने नहीं देगा । वह निष्कंटक राज्य करेगा । धाय मां !

पन्ना : विलासी और अत्याचारी राजा कभी निष्कंटक राज्य नहीं कर सकता ।

सामली : लेकिन रक्त से भीगी तलवार लेकर वह सीना ताने हुए अपने महल में गया है ।

पन्ना : लोगों ने उसे पकड़ा नहीं ? सैनिक चुपचाप देखते ही रहे ?

सामली : सैनिकों को उसने अपनी तरफ मिला लिया है । लोग उससे डरते हैं । महाराणा विक्रमादित्य का राज्य भी तो ऐसा नहीं था कि लोग उनसे प्रेम रखते ? उनके पहलवानों की सहायता से राज्य नहीं चल सकता । सभी सामन्त महाराणा से असन्तुष्ट थे ।

पन्ना : अब क्या होगा ?

सामली ; थोड़ी देर बाद ही वह कुंवरजी को मारने आयेगा। आज की रात बहुत अंधेरी है। आज की रात में ही वह अपने को पूरा महाराणा बना लेना चाहता है। किसी तरह से हो कुंवरजी की रक्षा होनी चाहिए धाय मां।

पन्ना : कुंवरजी की रक्षा .... **(सोचते हुए)** कुंवरजी की रक्षा ! अवश्य होगी .... अवश्य होगी। अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूत-रक्त है। दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।

सामली : यह तो आगे की बात है पर तुम कुँवर जी की रक्षा किस तरह करोगी ?

पन्ना : मैं ? मैं इस अंधेरी रात में ही उसे लेकर कुंभलगढ़ भाग जाऊंगी।

सामली : और चन्दन कहां रहेगा ?

पन्ना : जहां भगवती तुलजा उसे रक्खेंगी। मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।

सामली : धन्य हो, धाय मां ! पर तुम अंधेरी रात में नहीं भाग सकोगी ?

पन्ना : क्यों ? अंधेरी रात में मुझे कौन जानेगा ? कौन पहिचानेगा ?

सामली : तुम महलों से निकल भी न सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे। एक ओर से तो तुम्हारा महल घिर हो चुका था।

पन्ना : हा ! भगवान् एकलिंग ! अब क्या होगा ?

सामली : जैसे भी हो कुंवरजी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों को सहायता नहीं मिल सकती ?

सामली : सैनिक तो उसके हैं, धाय मां।

पन्ना : और सामन्त।

सामली : उनमें अभी इतना साहस नहीं है।

पन्ना : तब मैं स्वयं तलवार लेकर कुंवर की रक्षा करूंगी। भैरवी बन कर युद्ध करूंगी। मरते-मरते मैं उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगी। उसके और मेरे कुंवर के बीच में मेरे खून का समुद्र लहराएगा जिसे वह इस जीवन में पार भी न कर सकेगा।

सामली : उसके साथ सैनिक भी हो सकते हैं, धाय मां ! युद्ध में तुम्हारे प्राण जायेंगे और कुंवरजी भी न बचेंगे।

पन्ना : तो फिर क्या करूं ? सामली ! घुटने टेककर कुंवर की जीवन-भिक्षा मांगूंगी। बनवीर मनुष्य है। उसके मन में कुछ तो दया होगी।

सामली : राजा की हत्या करने के बाद दासी-पुत्र मनुष्य है ? वह जंगली पशु से भी गया-बीता है।

पन्ना : फिर मेरे कुंवर कैसे बचेंगे ? कैसे बचेंगे मेरे कुंवर !

(सिसकी)

सामली : इसका उपाय मैं क्या बताऊं, धाय मां ! मैं तो महल की एक परिचारिका हूं। मैं क्या कहूं ! पर इतना कहे जाती हूं कि वह क्रूर और अत्याचारी बनवीर आता ही होगा। सर्प की तरह उसकी भी दो जीभें हैं जो एक रक्त से नहीं बुझेंगी। उसे दूसरा रक्त भी चाहिए। और वह कुंवर का .... तुम कुछ बोल नहीं रही हो धाय ! आंखें बन्द कर क्या सोच रही हो ?

पन्ना : भगवती तुलजा का ध्यान कर रही हूं कि वे मुझे शक्ति दें कि मैं कुंवर की रक्षा कर सकूं।

सामली : इस समय कुंवर की रक्षा शक्ति से नहीं हो सकेगी। कोई युक्ति ही काम दे सकती है **(चौंक कर)** कौन आ रहा है ?

पन्ना : **(जोर से)** दरवाज़े पर कौन है ?

(कीरत बारी का प्रवेश)

कीरत : अन्नदाता ! कीरत वारी हौं । धाय मां के चरन लागों ।

पन्ना : कीरत ! तुम हो ! आ गये ? बाहर तो कोई नहीं है ?

कीरत : अन्नदाता ! बाहर सिपाहियों का डेरा लग रहा है। जान नहीं पड़ता अन्नदाता कै आधी रात कौ जे का हो रहा है। पैंडें में किसी का भी पैसारा नहीं हो पाता। मैं तो बारी हौं इससे कोई कुछ बोला नहीं।

पन्ना : तो तुम बेखटके चले आये ?

कीरत : अन्नदाता ! मैं तो झूठी पत्तल उठाता हूं। कोई मालमता तो मेरे पास है नहीं। टोकनी है और उसमें पत्ते हैं। कुंवर जू ने ब्यारू करली धाय मां ? मैं जूठन पा लूं।

पन्ना : नहीं।

कीरत : कुंवर जू जुग-जुग जिएं धाय मां ! जब से कुंवर जू बूंदी से आये हैं तब से सगर महल में उजियारा फैल गया है। राना विक्रमाजीत जब हर भजन करेंगे तो धाय मां, अपना चौंर छतर कुंवर जू को ही तो सौंपेंगे। और जब कुंवर जू राना होयेंगे तो सगर जहान उनको बन्दगी करने आयेगा। सच जानो धाय मां ! कुंवर जू के सरूप दर्शन दाखिल हैं। मैं तो उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूं। (ठहर कर) धाय मां, कुछ सोच रही हैं ?

पन्ना : (चौंक कर) एं ! हां, मैं सोच रही हूं (**सामली से**) तुम बाहर जाके देखो सिपाही कहां-कहां खड़े हैं और कितने सिपाही हैं।

सामली : बहुत अच्छा। धाय मां ! मैं जाती हूं। (**प्रस्थान**)

पन्ना : तो कीरत ! तुम कुंवरजी को बहुत प्यार करते हो ?

कीरत : अन्नदाता ! प्यार कहने में जबान पर कैसे आवे ? वो तो दिल की बात है। मौके पै ही देखा जाता है। और

कहने को तो मैं कही चुका हूं कि उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हौं !

पन्ना : जान तक हाजिर कर सकते हो ?

कीरत : ऐसी बातों में तीन तिर बाचा नई हराते, धाय मां ! मौके पै ही देखा जाता है।

पन्ना : तो वह मौका आ गया है, कीरत !

कीरत : मौका ! कैसा मौका ?

पन्ना : कुंवरजी को बचाने का।

कीरत : कौन के सिर पै भैरू बाबा की आंख चढ़ी है जो कुंवरजी का बाल भी बांका कर सके ? और कीरत के रहते ? धाय माँ, हंसी तो नहीं कर रही हैं ? अन्नदाता !

पन्ना : नहीं कीरत, हंसी का समय नहीं है। कुंवरजी के प्राण संकट में हैं।

कीरत : कौन है जिसने सूरज पै धूर उछाली है ?

पन्ना : बनवीर।

कीरत : अरे, वो बनवीर जो महाराजा विक्रमाजीत के दरबार में बन्दर सरीखा नाचता है ?

पन्ना : बहुत बातों का समय नहीं है, कीरत ! बोलो कुंवरजी को बचाओगे ?

कीरत : तो मैं तलवार ले आऊं !

पन्ना : तलवार लाने का समय नहीं है। इस समय लड़ने से काम नहीं चलेगा। एक तरकीब करना होगा।

कीरत : हुकुम दें, अन्नदाता !

पन्ना : भवानी तुलजा ने मेरे मन में सब उपाय सुझा दिये हैं।

कीरत : हां, ध्यान तो कर रही थीं आंख मूंद के ! तो भवानी ने कौन सा हुकुम करा ?

पन्ना : उसे मानोगे ?

कीरत : अन्नदाता, सिर माथे। सिर चढ़ा के मानूंगा।

पन्ना : अच्छा, तो सुनो। तुम बारी हो। तुम्हें बाहर जाने से कोई नहीं रोकेगा। तुम तो टोकरी में जूठी पत्तल उठा के जाते ही हो।

कीरत : ठीक कहती हैं, अन्नदाता! आते वक्त भी किसी ने नहीं रोका।

पन्ना : तो तुम कुंवर जी को टोकरी में लिटाकर उन पर गीली पत्तलें डाल कर महल से बाहर निकल जाओ।

कीरत : वाह! अन्नदाता ने खूब सोचा! खूब सोचा! मैं ऐसे निकल जाऊंगा कि सिपाही लोग मुंह देखते ही रह जायेंगे। तो कुंवर जी कहां हैं?

पन्ना : सो रहे हैं। आज भूमि पर ही सो गए। उन्हें धीरे से उठाकर अपनी टोकरी में सुला लेना। वे जागने न पावें।

कीरत : अन्नदाता! उनको पता भी नहीं चलेगा कि वे कहां से कहां सो रहे हैं।

पन्ना : (गहरी सांस लेकर) चित्तौड़ का राजकुमार पत्तल ओढ़ के सोयेगा। कौन जानता था!

कीरत : यह सब भाग की बात है, अन्नदाता! आज पत्तल ओढ़ के सोयेंगे कल साल-दुसाला ओढ़ेंगे।

पन्ना : तुम जाओ, जल्दी करो।

कीरत : बहुत अच्छा, अन्नदाता! कुंवरजी कहां हैं?

पन्ना : मेरे कमरे में ही सो गये हैं। तुम उन्हें उठा के तो ले जा सकोगे?

कीरत : अन्नदाता! अगर हुकुम दें तो बनवीर तक को सिर पै उठा के ले जा सकता हूं।

पन्ना : ठीक है। तुम्हारी टोकरी तो काफी बड़ी है।

कीरत : अन्नदाता! आपके जस ने ही तो मेरी टोकरी बड़ी कर दी

है। सारे राजमहल की पत्तलें छोटी टोकरी में कैसे आ सकती हैं? और अन्नदाता! आज तो बनवीर के साथ बहुत सामन्तों ने खाया है। मैंने भी सोचा आज बड़ी टोकरी ले चलूं। सो वो ही लाया हूं।

पन्ना : तो चलो, मैं तुम्हारी मदद कर दूं!

कीरत : अन्नदाता! आप तकलीफ न उठायें। मैं सब कर लूंगा।

पन्ना : और हां, कुंवरजी को लेकर तुम बेरिस नदी के किनारे मिलना। वहां जहां श्मशान है।

कीरत : ठीक है, अन्नदाता! वहीं मिलूंगा। वहां मुझ पै किसी भी आदमी की नजर न पड़ेगी।

पन्ना : तो जाओ कीरत! आज तुम जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सम्हाला है। एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है। तुम धन्य हो!

कीरत : अन्नदाता! धन्य तो आप हैं कि मुझ को आपने ऐसी सेवा करने का काम सौंपा है। तो मैं चलूं?

(सामली का प्रवेश)

सामली : धाय मां! महल चारों तरफ सिपाहियों से घिर गया! उत्तर की तरफ ही सात सिपाही हैं, बाकी तीनों तरफ बीस-बीस सिपाही पहरा दे रहे हैं। शायद उत्तर की तरफ के सिपाही बनवीर को लेने गये हैं।

पन्ना : कोई चिन्ता की बात नहीं। सामली! तुम यहीं ठहरना मैं अभी आती हूं।

सामली : देख के क्या करोगी? मैं तो देख आयी हूं। कुंवर को बचाने का कोई उपाय सोचो।

पन्ना : मैं अभी आती हूं। (कीरत से) चलो कीरत!

(दोनों का प्रस्थान)

सामली : न जाने धाय मां क्या सोच रही हैं! कीरत बारी भी तब

में यहीं बना है। क्या होगा ? हाय ! बनवीर ने महाराणा को रक्त में नहला दिया। दुष्ट बनवीर ! ..... तुझे नर्क में भी चैन न मिलेगा। कुंवर उदयसिंह पर आंख लगाई है। भवानी ! कुंवर की रक्षा करो ! रक्षा करो ... !

(पन्ना का प्रवेश)

पन्ना : अब ठीक है। कुंवर की रक्षा हो गयी।

सामली : (प्रसन्नता से) हो गयी ! हो गयी ! हो गयी ! कैसे ?

पन्ना : कीरत ने अपनी टोकरी में कुंवर को सुला दिया। ऊपर से पत्तलें ढक दीं और उन पर पानी छिड़क दिया। वह उन्हें लेकर बेखटके महल से बाहर हो जायगा। कोई उससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुंवर जी बच गये ! कुंवर जी बच गये !

सामली : वाह, वाह, धाय मां ! बहुत अच्छा सोचा, बहुत अच्छा सोचा। सिपाही समझेंगे कि कीरत बारी झूठी पत्तलें ले जा रहा है। कोई इससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुंवर जी बच गये !

पन्ना : चित्तौड़ के भाग्य से ही वे बचेंगे।

सामली : जरूर बचेंगे। पर धाय मां ! यह सब तुम्हें किसने सुझाया ?

पन्ना : भवानी ने। मैंने आंख बन्द कर उनका ध्यान किया। उसी समय कीरत बारी आया। उसने कहा .... मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूं। कोई माल-मता तो मेरे पास है नहीं। टोकरी है और उसमें पत्ते हैं। बस, भवानी ने यही बात मुझे सुझा दी।

सामली : पर एक बात है, धाय मां !

पन्ना : क्या ?

सामली : बनवीर यहां जरूर आयेंगे। वे तुम्हारे महल में कुंवर जी की खोज करेंगे। जब वे कुंवर जी को न पावेंगे और तुमसे पूछेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी ?

पन्ना : कह दूंगी कि मैं नहीं जानती।

सामली : इससे वे नहीं मानेंगे। क्रोध में आकर अगर उन्होंने तुम्हारे ऊपर तलवार चला दी तो कुंवर जी तुम्हारे बिना कैसे ज़िएंगे ?

पन्ना : मैं अपने प्राणों की भिक्षा मांगूंगी जो चित्तौड़ की किसी नारी ने नहीं मांगी। ऐसी विचित्र भिक्षा वे अवश्य दे देंगे।

सामली : बनवीर के सिर पर खून चढ़ गया है। वह दैत्य बन गया है। कुंवर जी को न पाकर वह तुम्हें जरूर मार डालेगा।

पन्ना : मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, सामली।

सामली : पर चिन्ता कुंवर जी की है। तुम्हारे बिना वे भी तो जीवित नहीं रहेंगे। फिर तुम्हारा बलिदान चित्तौड़ के किस काम आयेगा। कुंवर जी को तो जीना ही चाहिए।

पन्ना : सचमुच कुंवर जी मेरे बिना नहीं जियेंगे ! थोड़ी-सी बात पर तो रूठ जाते हैं। मुझे न पाकर उनका क्या हाल होगा !

सामली : किसी तरह बनवीर को धोखा नहीं दे सकतीं ?

पन्ना : दे सकती हूं।

सामली : किस तरह ?

पन्ना : कुंवर जी की शैया पर किसी और को सुला दूंगी। वह क्रोध में अन्धा रहेगा ही। पहिचान भी नहीं सकेगा कि यह कौन सोया है।

सामली : तो कुंवर जी की शैया पर किसे सुला दोगी ?

पन्ना : किसे सुला दूंगी। **(सोच कर)** सामली ! मेरे हृदय पर वज्र गिर रहा है। मेरी आंखों में प्रलय का बादल घुमड़ रहा है। मेरे शरीर के एक-एक रोम पर बिजली तड़प रही है।

सामली : धाय मां ! सम्भल जाओ। ऐसी बातें न कहो। कुंवर की शैया पर .....

पन्ना : सुला दूंगी। उसी को ! उसी को सुला दूंगी जो मेरी आंखों

का तारा है ... चन्दन ! .... चन्दन को सुला दूंगी, सामली (सिसकियां) चन्दन को सुला दूंगी। उस नन्हें-से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूंगी। कह दूंगी कि इसके नन्हें-से कलेजे पर हलकी-सी चोट करना। बेचारा अभी बालक है। भीषण प्रहार से मेरा लाल चौंक उठेगा।

सामली : धाय मां ! धाय मां ! ऐसा मत कहो ... ऐसा मत कहो। ऐसा मैं नहीं सुन सकूंगी। महल के किसी कोने में छिप रहूंगी। हाय ! तुम क्या कह रही हो ! ऐसा मत करना, धाय मां ! ऐसा मत करना। मैं जाती हूं ! ऐसा मैं नहीं सुन सकूंगी .... ऐसा मैं नहीं सुन सकूंगी (**प्रस्थान**)।

पन्ना : चली गई। कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकूंगी। जो मुझे करना है, वह सामली सुन भी न सकेगी। भवानी ! तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया ! मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूं। अपने लाल को दे सकूं। यही राजपूतनी का व्रत है। यही राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूतनी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो ! माता के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो जिससे ममता का स्रोत बन्द हो जाये ! भवानी ! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूं। खीची राजपूतनी अपने रक्त से मंगल-तिलक करे। (**नेपथ्य में चन्दन का स्वर**) मां ! ... मां ! ... मां !

(**चन्दन का प्रवेश**)

चन्दन : मां ! देखो, मेरे पैर में चोट लग गई। यह रक्त निकल रहा है।

पन्ना : कहां रक्त निकल रहा है ? लाओ, देखूं मेरे लाल ! ओहो ! अंगूठे में यह चोट कैसे लगी ? रक्त निकल रहा है। कितना रक्त निकल रहा है। लाओ। इसे बांध दूं। (**अपनी साड़ी से कपड़े का टुकड़ा फाड़ती है।**) सीधा पैर करो ! हां

ठीक .... इसे बांध देती हूं। (**बांधते हुए**) यह चोट कैसे लगी, लाल !

चन्दन : मैं जैसे ही भोजन कर के उठा मां ! सज्जा ने कहा कि महल के चारों तरफ सिपाही इकट्ठे हो रहे हैं। मैं देखने के लिए ऊपर के झरोखे में चढ़ गया। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। जैसे ही मैं नीचे कूदा एक टूटा हुआ शीशा अंगूठे में चुभ गया। कोई बात नहीं है, मां ! रक्त तो निकला ही करता है। पर ये सिपाही महल के चारों तरफ क्यों इकट्ठे हो रहे हैं ?

पन्ना : आज नाच-रंग का दिन है न ? वही सब देखने के लिए आये होंगे। या फिर सोना ने उन्हें बुलाया होगा। वह नीचे नाच रही होगी।

चन्दन : मां ! सोना अच्छी लड़की नहीं है। मैं कल उससे कहूंगा मां, कि कुंवर जी को अपना नाच न दिखाया करे। उनका मन आखेट करने में नहीं लगता।

पन्ना : मैं भी उसे समझा दूंगी, चन्दन !

चन्दन : कुंवर जी कहां हैं, मां ! आज भोजन में भी साथ नहीं चले।

पन्ना : कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : तब से वे सो ही रहे हैं ? मां, कुंवर जी को ज्यादा नींद क्यों आती है ? मैं देखूं, कहां सो रहे हैं।

पन्ना : बुरा मान कर कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : सोना ने ही उन्हें बुरा मानना सिखला दिया, मां ! नहीं तो कुंवर जी पहले कभी बुरा नहीं मानते थे। खेल-खेल में भी बुरा नहीं मानते थे। साथ खेलते थे, साथ खाते थे। आज अकेले कुछ खाया भी नहीं गया, मां।

पन्ना : तो चलो चन्दन ! मैं तुम्हें जी भर के खिला दूं !

चन्दन : अब कुंवर जी के साथ कल खाऊंगा, मां। कल हम दोनों

साथ बैठेंगे .... तुम प्रेम से परोस-परोस कर खिलाना। कल खूब खाऊंगा, मां! कुंवर जी से भी ज्यादा। कहते हैं कि मैं चन्दन से ज्यादा खाता हूं। अब कल से यह कहना भूल जायेंगे। (हंसती है)। क्यों न मां!

पन्ना : ठीक है, लाल!

चन्दन : मां! अच्छी तरह से क्यों नहीं बोलती? और तुम्हारी आंखें ... तुम्हारी आंखों में पानी कैसा? मां! एं .... तुम्हारी आंखों में .....

पन्ना : कहां चन्दन! पानी कहां? और तुम्हारे अंगूठे से रक्त की धार बहे, मेरी आंखों से एक बूंद पानी भी न निकले?

चन्दन : ओह! मां, तुम तो बातें करने में बड़ी अच्छी हो। जब मैं बड़ा होकर बहुत-सी जागीरें जीतूंगा, मां! तो मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवाऊंगा। देवी के स्थान पर तुमको बिठलाऊंगा। और तुम्हारी पूजा करूंगा। तुम अपनी पूजा करने दोगी?

पन्ना : तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है, चन्दन!

चन्दन : यह मत समझना मां! कि मैं जागीरें नहीं जीत सकता। उस जंगली खरगोश की तरह तेजी से दौड़ सकता हूं। आसमान तक धावा बोल सकता हूं।

पन्ना : अब बहुत बातें न करो, चन्दन! रात अधिक हो रही है, सो जाओ।

(कुछ आहट होती है।)

चन्दन : मां ... मां, देखो, उस दरवाजे से कौन झांक रहा है?

पन्ना : कीरत बारी होगा। तुम्हारा भोजन उठाने आया होगा। मैं देखती हूं। (उठकर देखती है।)

चन्दन : कोई और हो तो मैं अपनी तलवार लाऊं!

पन्ना : (लौटती हुई) कोई नहीं है। महल में किसका डर है ? लाल ! तुम सो जाओ !

चन्दन : कहां सोऊं ! सज्जा तो अभी रसोई-घर में ही होगी। मेरी शैया ठीक न की होगी।

पन्ना : तो .. तो ... तो तुम कुंवर जी की शैया पर सो जाओ। शैया ठीक होने पर तुम्हें उसपर लिटा दूंगी।

चन्दन : और कुंवर जी बुरा मान गये तो ?

पन्ना : मैं कुंवर जी को समझा दूंगी। तुम्हारे लेटने से कुंवर जी की शैया मैली तो हो न जायगी।

चन्दन : तुम बहुत अच्छी हो, मां ! आज कुंवर जी की शैया पर लेट कर देखूं ! अब तो मैं भी राजकुमार हो गया ! (**एकाएक स्मरण कर**) पर मेरी माला ! राजकुमार के गले में माला होती है न ! तुमने मेरी टूटी माला गूंथ दी !

पन्ना : नहीं गूंथ पाई, लाल ! सामली आ गई थी।

चन्दन : कल गूंथ देना। भूलना नहीं, मां। (**शैया पर लेटता है।**) आहा मां ! कितनी नरम शैया है ! जी होता है, सदा इसी पर सोता रहूं।

पन्ना : (**चीखकर**) चन्दन !

चन्दन : क्या हुआ, मां !

पन्ना : कुछ नहीं ... कुछ नहीं ... । आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है। कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है। तुम सो जाओ तो मैं भी सो जाऊंगी।

चन्दन : मैं किसी वैद्य के यहां जाऊं, मां !

पन्ना : नहीं वैद्य के पास इसकी दवा नहीं है। यह आप-से-आप उठती है और आप-से-आप शान्त हो जाती है। तुम सो जाओ .... मैं भी कुंवर जी को खिला कर जल्दी सो जाऊंगी।

चन्दन : अच्छा मां ! तुम्हारी आज्ञा नहीं टालूंगा । लो मैं आंखें बन्द कर लेता हूं ।

पन्ना : सो जाओ ! चित्तौड़ की अच्छी कहानियों को सोचते-सोचते सो जाओ ! अपनी मातृभूमि में कितने बड़े-बड़े वीर हुए हैं । बापा रावल जिन्हें हारीत ऋषि ने दर्शन दिये, जिन्होंने मेवाड़ की नींव डाल कर विदेशों पर चढ़ाई की और उन्हें जीता । इन्होंने ही पहले पहल अपने आराध्य देव एकलिंग का मन्दिर बनवाया । राजा नरवाहन जिन्होंने अपनी अकेली शक्ति से अनेक शत्रुओं को पराजित किया । राजा हंसपाल जिन्होंने अनेक राज्य जीत कर अपने राज्य में मिलाये । रावल सामन्त सिंह जिन्होंने गुजरात के सोलंकी राजा उदयपाल को युद्ध में पराजित किया । रावल जय सिंह, रावल समर सिंह .....

चन्दन : (चीखकर) मां, मैं आंखें बन्द कर तुम्हारी बातें सुन रहा था, कि एक काली छाया मेरे सिर के पास आई और उसने मुझे मारने को तलवार उठाई ! मां ... वह काली छाया ... काली छाया !

पन्ना : मैं तो तुम्हारे पास बैठी हूं, लाल ! यहां कौन-सी काली छाया आयेगी ?

चन्दन : कोई छाया नहीं आयेगी मां ! पर न जाने क्यों नींद नहीं आ रही है । तुम मुझे कोई गीत सुना दो तो सुनते-सुनते सो जाऊं ।

पन्ना : अच्छी बात है, मेरे लाल ! मैं गीत ही गाऊंगी । अपने लाल को सुला दूं !

(करुण स्वर में गीत गुनगुनाती है ।)

उड़ जा रे पंखेरुआ, सांझ पड़ी ।
चार पहर बाट इली जोही

मेड्यां खड़ी ए. खड़ी।
उड़ जा रे पंखेरुआ, सांझ पड़ी ।।
डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा
लग रयी झड़ी ए झड़ी।
उड़ जा रे पंखेरुआ, सांझ पड़ी !!
तेरी फिकर हूं भयी दिवानी।
मुसकल घड़ी ए घड़ी। उड़ जा रे पंखेरुआ.

(धीरे-धीरे गान समाप्त होता है।)

पन्ना : (फिर पुकारती है) चन्दन !

(चन्दन के न बोलने पर पन्ना अलग हट कर जोर से सिसकी लेती है।)

पन्ना : मेरा लाल सो गया ! मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा। (सिसकियां लेती है।) ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है ! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल-से लाल को सुला दिया है। तू सर्पिणी है। सर्पिणी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है। जान-बूझ कर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है। हाय ! अभागिनी मां ! संसार में तेरा भी जन्म होने को था ? (सिसकियां लेती है। फिर चन्दन को संबोधित करते हुए) लाल ! तुम्हारी माला मैं नहीं गूंथ सकी। तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती ? (सिसकियां) आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी ! तुम क्या जानो कि कल तुम और कुंवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे ! कहते थे.... कल तुम परोस कर खिलाना। मैं अब किसे खिलाऊंगी, चन्दन ! (सिसकियां) तुम बड़ी-बड़ी जागीरें जीतोगे,

मन्दिर बनवाओगे, देवी के स्थान पर मुझे बिठलाओगे और मेरी पूजा करोगे ! मैं ऐसी देवी हूं कि अपने भक्त को ही खा रही हूं । **(सिसकियां)** तुम्हारे अंगूठे से रक्त की धारा बही । अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूंगी । मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! जाओ यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो ! आज मैंने भी दीप-दान किया है । दीप-दान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है । ऐसा दीप-दान भी किसी ने किया है ! एक बार तुम्हारा मुख देख लूं । कैसा सुन्दर और भोला मुख है ! **(सिसकियां लेती है ।)**

(एकाएक भड़भड़ाहट की आवाज होती है । हाथ में तलवार लिये बनवीर आता है ।)

बनवीर : **(मद्य पीने से उसके शब्द लड़खड़ा रहे हैं ।)** पन्ना !

पन्ना : महाराज बनवीर !

बनवीर : सारे राजपूताने में एक ही धाय मां है पन्ना !! सबसे अच्छी ; मैं ऐसी धाय मां को प्रणाम करने आया हूं । **(रुककर)** एं, धाय मां की आंखों में आंसू !

पन्ना : नहीं . . . आंसू नहीं हैं । आज मेरे कुंवर बिना भोजन किये ही सो गये ।

बनवीर : आज के दिन भोजन नहीं किया ? अरे, आज तो उत्सव का दिन है । आनन्द का दिन है । **(अट्टहास करता है ।)** मेरे महल में तीन सौ सामन्तों ने भोजन किया । आज कीरत बारी की टोकरी देखती ! भोजन उठाते-उठाते वह जिन्दगी भर के लिए थक गया होगा । **(हंसता है ।)** जिन्दगी भर के लिए ! तो कहां हैं कुंवर उदयसिंह ? मैं उन्हें अपने हाथ से भोजन करा दूं !

पन्ना : कुंवर सो गये हैं। वे किसी के हाथ से भोजन नहीं करते, मैं ही उन्हें खिला दूंगी।

बनवीर : धाय मां हो न ! आज पन्ना ! आज तुमने सोना का नाच नहीं देखा ! ओह ! कितना अच्छा नाचती है ! मैंने उससे कह दिया था कि वह कुंवर उदयसिंह को और धाय मां को अपना नाच दिखला दे।

पन्ना : वह आई थी। शायद तुम्हीं ने उसे भेजा था, पर कुंवरजी का जी अच्छा नहीं था, इसीलिए मैंने उन्हें नहीं भेजा।

बनवीर : जी अच्छा नहीं था, और आज का दीप-दान भी तुमने नहीं देखा ?

पन्ना : मेरे लिए दीप-दान देखने की बात नहीं है, करने की बात है।

बनवीर : ठीक है, धाय मां तो मंगल-कामनाओं की देवी हैं। वे दीप-दान करके चित्तौड़ का कल्याण करेंगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूंगा। एक बात कहूं, पन्ना ! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूं। वहां तुम्हारे लिए तुलजा भवानी का मन्दिर बनेगा। मन्दिर ! सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुम में कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मन्दिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

पन्ना : **(चीखकर)** बनवीर ?

बनवीर : **(अट्टहास कर)** महाराज बनवीर नहीं कहा ? मेरे कहने भर से तुम देवी हो गई ! महाराज बनवीर को बनवीर कहने लगी ! **(हंसता है।)** देवी को प्रणाम ! देखो, अब तुम्हें मोह-ममता से दूर रहना होगा। तुम कुंवर उदयसिंह को मुझे दे दोगी। और मैं उसे यह तलवार दूंगा। **(तलवार खींच लेते हैं।)**

पन्ना : एं, यह तलवार ! इस पर रक्त क्यों लगा है !

बनवीर : रक्त तो तलवार की शोभा है, पन्ना। वह अनन्त सुहाग से भरी है। यह तो उसके सिन्दूर की रेखा है। बिना रक्त के तलवार भी कभी तलवार कहला सकती है!

पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो। महाराज!

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है! चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धाय मां होने पर तुममें इतनी ममता भर गई कि तलवार नहीं देख सकती? पन्ना! तलवारें आसानी से म्यान के भीतर नहीं जातीं। जब म्यान में राज्यश्री भर जाती है तो तलवार बाहर निकल आती है।

पन्ना : आधी रात हो चुकी है, महाराज बनवीर! विश्राम करो।

बनवीर : विश्राम मैं करूं? बनवीर! जिसे राजलक्ष्मी को पाने के लिए दूर तक की यात्रा करनी है। मैं अपने साथ कुंवर उदयसिंह को भी ले जाना चाहता हूं।

पन्ना : यह नहीं होगा ...यह नहीं होगा, महाराज बनवीर!

बनवीर : जागीर नहीं चाहती?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदयसिंह के बदले जो मांगो वह दिया जायगा।

पन्ना : राजपूतनी व्यापार नहीं करती, महाराज! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।

बनवीर : दो में से किसी पर भी तुम नहीं चढ़ सकोगी। तुम्हारा महल सैनिकों से घिरा है।

पन्ना : सैनिकों को किसने आज्ञा दी? महाराज विक्रमादित्य ....

बनवीर : **(बीच ही में)** वे अब इस संसार में नहीं हैं। पन्ना! उन्होंने रक्त की नदी पार कर ली है। उसी रक्त की लहर मेरी तलवार पर है!

पन्ना : ओह बनवीर! हत्यारा बनवीर!

बनवीर : महाराणा बनवीर को हत्यारा बनवीर नहीं कह सकती,

पन्ना ! हत्यारा बनवीर कहनेवाली जीभ काट दी जायगी।

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो। और यहां से चले जाओ। महाराणा विक्रमादित्य ....

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती है ? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जयकार के साथ नाम लो।

पन्ना : धिक्कार है, बनवीर ! तुम्हारी मां ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला।

बनवीर : चुप रह धाय ! बच्चे की पालनेवाली, लोरियां सुनानेवाली एक साधारण दासी महाराणा से बात करती है ? कहां है उदयसिंह ?

बनवीर : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता। नीच नारकी! महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद तू उदयसिंह को देख भी नहीं सकता।

बनवीर : मैं नहीं देखूंगा, मेरी तलवार देखेगी। विक्रम के रक्त से सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोई जायगी।

पन्ना : ओह क्रूर बनवीर ! तुम तो उदयसिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे। नहीं-नहीं यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। महाराणा बनवीर ! तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो। पर कुंवर उदयसिंह को छोड़ दो। मैं उसे लेकर संन्यासिनी हो जाऊंगी। तीर्थों में बास करूंगी। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर मेरा कुंवर भी मेरी गोद में रहे। बनवीर ! महाराणा बनवीर, मुझे यह भिक्षा दे दो।

बनवीर : दूर हट दासी ! यह नाटक बहुत देख चुका हूं। उदयसिंह की हत्या ही तो मेरे राजसिंहासन की सीढ़ी है। जब तक

वह जीवित है तब तक सिंहासन मेरा नहीं होगा। तू मेरे सामने से हट जा!

पन्ना: मैं नहीं हटूंगी! अपने कुंवर की शैया से दूर नहीं हटूंगी।

बनवीर: उदयसिंह को सुला दिया है जिससे उसे मरने का कष्ट न हो। उसका मुख भी ढक दिया है! वाह री धाय मां। बालक के मरने में भी ममता का ध्यान रखती है। (तीव्रता से) शैया से दूर हट, पन्ना! मैं उसे चिर निद्रा में सुला दूं।

पन्ना: (साहस से) नहीं, ऐसा नहीं होगा, क्रूर नराधम, नारकी! ले मेरी कटार का प्रसाद ले (**आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर सुन पड़ती है।**)

बनवीर: (**क्रूर अट्टहास करता है**) ह ह ह ह! दासी क्षत्राणी। कर लिया कटार का वार। यह कटार मेरे हाथ में है। अब किससे वार करेगी? अब तुझे भी समाप्त कर दूं? लेकिन स्त्री पर हाथ नहीं उठाऊंगा।

पन्ना: अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता? पापी!

बनवीर: (**शैया के समीप जाकर**) यही है, यही है, मेरे मार्ग का कंटक। आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीप-दान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूंगा। यमराज! लो इस दीपक को। यह मेरा दीप-दान है।

(**उदय के धोखे में चन्दन पर जोर से तलवार का प्रहार करता है। पन्ना जोर से चीख कर मूर्च्छित हो जाती है। कमरे में मन्द लौ से दीपक जलता रहता है!**)

ऊसर

भुवनेश्वर

पात्र

लड़का

गृहस्वामी

युवक : एक ट्यूटर

मोटी रमणी

गृह-स्वामिनी

छोटी लड़की

दो लड़कियां

[एक मध्यवर्ग के बँगले का ड्राइंग-रूम—कमरा छोटा और नीचा पटा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तसवीरें आज ही टांगी गई हैं, जो कीलें गाड़ने के ताजे निशानों से मालूम होता है। दो दरवाजों और तीन खिड़कियों पर पर्दे पड़े हैं, वे रोज ही पड़े रहते हैं; आज सिर्फ खिड़कियों के पर्दों के नीचे की फटी हुई कोरें तुरप दी गई हैं। भीतर के दरवाजे पर जाली का कटा हुआ पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत सी तसवीरें और कुछ बड़े घोंघे और शंख रखे हैं। एक 'प्लास्टर आव पेरिस' का गान्धी का बस्ट भी है। फर्नीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा, और अक्सर बे-मेल है—गहरी नीली सुइट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली वुड-वर्क्स का भी सुइट है जिस पर रेशम से एक बड़ी बतख कटी हुई, काली बेंत पड़ी हैं; कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं जो नंगी हैं और भीतर के दरवाजे के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाये कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताजा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखाई देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज दहलीज पर सर रखे सो रहा है और एक किरमिच की कुर्सी पर एक युवक हाथों को जंगलों में भींचे टांगें हिलाता हुआ, पोर्च में खड़ी बड़ी गोली कार की तरफ बड़ी देर से—करीब-करीब जब से वह लाल सुर्खी को दलती हुई और अपने बेलुन टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आई है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर के दरवाजे से एक आठ बरस का लड़का त्यौहारी कपड़े पहने एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और युवक दोनों चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है और युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नजर हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है, उसका एक पैर का हौज सरककर नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद बेराठी पिंडली दिखाई दे रही है।]

लड़का : (कुत्ते को जूते से सहलाते और अंगुली चटाते हुए) मेरा पिप्पा ! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम अकेले पड़े हो, मेरा बूं—बी ! (वहीं बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख बन्द किए कान और दुम हिलाता है) तुम मैले हो …… देखो चुपके से जब सब सो जायँ, तो तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम तुम तो भाई-भाई हैं। हम, तुम, ह …… ह ! (कुत्ते को उठाता-सा ।)

[भीतरवाले दरवाज़े से कुर्सियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृह-स्वामी का हठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है, पर उसका करी इस्तरी किया सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एकबारगी छोड़कर कमरे में आ जाता है, पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टांगों से चिपटकर खेलने लगता है।)

गृहस्वामी : (दियासलाई से दांत कुरेदते हुए) यह क्या बदतमीजी है। भीतर मेहमान आये है। तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो ! (कुर्सियां देखते हुए) और यह सब कुर्सियां क्यों बरबाद कर दीं ……

लड़का : (चट से) कुर्सी ? कहां— ? ये तो आपने हटाई हैं।

गृहस्वामी : (खिड़की के बाहर थूककर) और अंग्रेजी तो आप सब भूल गये, अब कभी मेहमान आये तो आप अपने ट्यूटर के साथ ……

(थूकता है। लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक, जो गृहस्वामी के आते ही उठकर खम्बे के सहारे खड़ा हो गया था, भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ता है।)

गृहस्वामी : (युवक से) तुम कहां गये थे ? मैं कहता हूं कि जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे तो शाम को साइकिलबाजी न किया

कीजिये। (थूकता है) भाई जान, इसमें आप ही का फायदा है।

युवक : **(चुप है, जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।)**

गृहस्वामी : और तुम भीतर आ सकते थे ··· (सहसा) और तुमने चाय कहां पी ?

युवक : जी नहीं।

(गृहस्वामी जैसे इस जवाब से असन्तुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ से फिरकर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसककर लड़के के पास आना चाहता है। लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टांगों से खेल रहा है।)

ट्यूटर : आज तो मिसेज सिबल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी : **(जैसे उसने मिसेज सिबल का अपमान किया हो।)** क्या अच्छी है ? जरा-सी पार्टी पर आप देखिये हफ्ते-भर स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगों को घूम-घूमकर मकान और बाग दिखाया जा रहा है। फिर हम लोगों की ·········

ट्यूटर : मैं आज आप से सुबह से कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिज़ी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे ······

गृहस्वामी : **(एकटक उसकी तरफ देखता है जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है।)**

ट्यूटर : मैं सोचता हूँ कि यह इण्टेलेक्चुअल ऐक्सपेरीमेंटर का जीवन जो मैं ······

[कुत्ता चीख पड़ता है; शायद उसका पैर बूते

से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।

गृहस्वामी : देखो जी .... (लड़का कुत्ता बगल में दबाकर भीतर भाग जाता है।)

गृहस्वामी : (ट्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मैं इस भीड़-भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते। जब बाहर के आदमी होंगे तो वे बिलकुल दूसरी ही हो जायंगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेंगी। मैंने आपके टेबुल पर फिंगर बोल, मैंने सुनी भी न थी, पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फिंगर बोल बरतते हैं—हुँह ...

(ट्यूटर के हँसने का इन्तजार करता है)

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टांग दिया तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा—जैसे वह कोई क्यूबिज्म का डिज़ाइन हो।

ट्यूटर : (गम्भीरता से) अब तो मिसेज सिवल अच्छी हैं पहले से ?

गृहस्वामी : अच्छी क्या हैं ! (रुककर) उम्र का तकाजा है। अब देखो बाइस साल की मैरिड लाइफ में ... (रुक जाता है, जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं।)

ट्यूटर : (नीची नजर; हाथ से हाथ दबाये) मैं आप से कुछ कहना चाहता था ...... मुझे आपके यहां पूरे दो महीने हो गए ......

गृहस्वामी : (बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ। यह आपकी मेहरबानी है, पर मैं मजबूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च। मैं कतई मजबूर हूँ। यह मद्रासी मेम पच्चीस पर तैयार थी। मुझे कहना

न चाहिए, मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज से, समझे, यह इन्तज़ाम किया था।

ट्यूटर : मुझे अफसोस है!

गृहस्वामी : (कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गये थे?

ट्यूटर : मैं बाइसिकल पर कहीं नहीं गया; मैं गया ही नहीं······ (एकबारगी रुक जाता है।)

(सन्नाटा हो जाता है। पर यह साफ है कि किसी का बोलना जरूरी है।)

गृहस्वामी : (टाँग हिलाते हुए) मेरी जिन्दगी का एटीट्यूड बिलकुल मुख्तलिफ है। तुम अपने सोशलिज्म-ओशलिज्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि जिन्दगी का गहरे से गहरा मतलव तुम्हारे लिए साफ हो गया। जैसे कोई बड़ा सरकस घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया; पर ज़िन्दगी अगर इस तरह लटकों और फारमूलों में बाँधी जा सकती, तो आज तक कब की खत्म हो जाती। जी··· साहब सोशलिस्ट हैं, पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तों' की समाज से आप इंसानों को मिला है हम वापस ले लें—

(ट्यूटर, साफ है कि, इन बातों को निरर्थक समझता है।)

हाँ, हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरियाँ, हमारे बाजार, हमारे······

ट्यूटर : (उठकर बाहर खिड़की की तरफ झाँकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।)

गृहस्वामी : क्या वे आ रहे हैं?

ट्यूटर : (चुपचाप बाहर झाँक रहा है।)

गृहस्वामी : यह कैसी पार्टी है! (टहलता हुआ) आम लोग वाकई

……(फिर बैठ जाता है) मैं कहता हूँ कि आनेवाली जेनरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की, हम से अच्छी होगी। हम से ……

ट्यूटर : (मुस्कराता है) वे शायद पीछे से पार्क में चले गए।

गृहस्वामी : (चौंककर) पार्क में ! और कुसुम की तबियत स्ट्रेण्ड हार्ट, कैफिया स्परोग …… मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता, तहजीब की तसवीह एक बड़ी दुकान से दी गई थी——ऊपर, ऊपर, ऊपर——चढ़े चले जाइये; पर नीचे जमीन की आँतें हमें हजम करने के लिए बेताब हैं। वाकई आने वाला जेनरेशन——पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आती नहीं। यहीं जमीन की आंतें जब बजाय हजम करने के कै कर देती हैं ……

(भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर उस नजर को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाजे से एक मोटी अधेड़ रमणी भारी बनारसी साड़ी पहने, एक जरा दुबली रमणी महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ दोनों नीली साड़ियां पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पाजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हँसती हैं, जब दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती हैं।)

मोटी रमणी : (पास की कुरसी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद बैठिये कहता है) हम लोग पार्क में चले गये थे। (हांफकर) आपका डिनोमाइट भी हमने देखा। (सब हँस पड़ते हैं)

गृहस्वामी : (जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनोमाइट ?

(युवक ने उन लड़कियों को बैठा दिया है। सफेद धोती वाली भी,

जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है। उसके बैठ जानें पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है, सिर्फ युवक खड़ा रहता है।)

मोटी रमणी : आपका डिनोमाइट। (फिर हँसी होती है।)

गृहस्वामी : (गम्भीर होकर) खैर, यह तो मजाक है। पर यह मैं मानता हूँ, मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले बारूद एक आदमी की मर्जी से चाहे वह हजारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं।

(अब की वह खुद हँसी शुरू करता है।)

गृहस्वामिनी : यह योग-वोग बहुत जानते थे अब सब बेचारे भूल गए।

(फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी)

युवक : पापा का यह ख्याल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताकत पैदा करनी होगी।

गृहस्वामी : (हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों? और ऐसी ताकत मौजूद हैं, अगर हजरत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचायगी तो वह ताकत काम में लाई जायगी। बेचारा गान्धी क्या कहता है ......

युवक : गान्धी तो सठिया गया है।

(लड़कियां आपस में धीमी हँसी हँसती हैं।)

मोटी रमणी : मैं तो वह कुछ जानती नहीं। लेकिन हां, अभी विक्टोरिया-सी कोई मलका हो जाय, तो तब फिर ठीक हो जाय। दुनिया पर यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई।

युवक : विक्टोरिया क्या करेगी?

मोटी रमणी : तुम्हारा तो कहीं पता भी न था तब। विक्टोरिया के ही राज में तो सुख था।

गृहस्वामी : खैर लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िये। मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ ......

गृहस्वामिनी : क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे? कहीं घूम आयें?

गृहस्वामी : खाना खाकर चलेंगे, सिनमा या और कहीं ...... ।

युवक : (लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसकाकर बैठ जाता है। बड़ी लड़की उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है।) हाँ तो आपका वह किस्सा ......

गृहस्वामी : वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ, तो हम लोग आगा तुराब के हाते के पास एक बँगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानों के थे। खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जायं या हम लोग हिन्दुओं की। जब वहाँ गये तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हम से डरे हुए हैं और लाठियां लिये अपने सामान और बीवी-बच्चे लिये जा रहे हैं। हां, उसी तरह यूरोप में सब एक दूसरे से ......

गृहस्वामिनी : बेबी क्या घूमने गया है ?

युवक : (अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

(सब अपनी घड़ियाँ देखते हैं।)

छोटी लड़की : (धीरे से) अब साढ़े सात बजे हैं।

गृहस्वामिनी : रिकार्ड सुनियेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं !

युवक : (ओंठ दबाकर) कोई गाना ही गाइये।

(लड़कियाँ, खासकर बड़ी, शरमाती-सी है।)

गृहस्वामी : हाँ बेटियो, गाओ न !

मोटी रमणी : आप गाइये, इन बेचारियों को क्या आता है ?

गृहस्वामी : ओहो, तो आप ही गाइये !

(सब हँस पड़ते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा छा जाता है।)

मोटी रमणी : (युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ।

युवक : (ऊबा-सा) विलायत का किस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी : ये लड़कियां खेलती हैं, इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, पर मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामी : ब्रिज क्या होगा ? आइये ………

(गृहस्वामिनी एकबारगी उठकर भीतर जाना चाहती है।)

मोटी रमणी :
गृहस्वामिनी : } कहाँ ! !

गृहस्वामिनी : (द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए कॉफी-आफी ही मंगाऊँ।

मोटी रमणी : कॉफी क्या होगी—वैठिये बातें करें—अभी तो खाना खाना है।

(सब फिर हँस पड़ते हैं, और घड़ियां देखते हैं और सन्नाटा हो जाता है।)

गृहस्वामी : (युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना।

मोटी रमणी : ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामी : बेबी के लिए रखा है, ववाल-जान हुआ जा रहा है।

गृहस्वामी : (मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से वहुत ऊँचा है और जो नौकर-मालिक का सम्बन्ध हम में है, इस कदर हमको छोटा वना देता है कि वह हमारा मुकाबिला भी नहीं करता। उनका पाक खयाल है कि वह हम लोगों के साथ एक इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरीमेंट कर रहे हैं। ……

(कुछ समझदारी और कुछ ना-समझी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं, केवल युवक गम्भीर है।)

गृहस्वामी : उन्हीं का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यह हाल है। वे किताबों के अधकचरे असर से बगावत तो करना चाहते हैं, पर नहीं कर सकते; और मैं आपसे पूछता हूँ (**एकबारगी युवक की ओर देखकर नजर हटा लेता है**) वह बगावत किसके खिलाफ है ? आप नेचर से वैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते ! आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताकत आपका सर फटने से नहीं रोक सकती ······ (**एक बार धीमा पड़कर**) तुम उन्हें समझा देना ······

गृहस्वामी : मुझे तो आपकी बात पसन्द आई कि विक्टोरिया जैसी मलका कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आयें।

मोटी रमणी : (**गर्व से तनकर**) लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा।' राजा तो ईश्वर है ······

गृहस्वामी : खैर, मैं तो यह नहीं मानता ······

युवक : (**ऊबा-सा**) आइये कुछ खेलें ······

गृहस्वामी : ताश से तो मुझे नफरत है, बिल्कुल छिछोरा खेल है।

गृहस्वामिनी : फिर क्या खेलें, तुम्हीं बताओ !

मोटी रमणी : मैं एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरा (**सब लोग उसकी तरफ गौर से देख रहे हैं**) एक आदमी जैसे मैं, कुछ चीजों के नाम लूं, जैसे कमरा—

छोटी लड़की : (**चटक आवाज में**) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एकाएक कागज और पेंसिल ले लें और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना सोचे कई चीजों के नाम ले, जैसे 'कमरा' और सब लोग उस लफ्ज को सुनकर एकदम जो उनके

मन में आये अपने कागज पर लिख लें, फिर सबके कागज पढ़े जायें।

युवक : क्या खेल है ? (अपने को सँभालकर) यह तो अच्छी-खासी साइकोलोजिकल स्टडी है।

गृहस्वामिनी : (उत्साह से) मैं कागज लाती हूँ।

(भीतर जाती है और जरा देर में चिट्ठी लिखने का पैड, दो कलम और कुछ पेंसिलें लेकर आती है। लड़कियां इस बीच में आपस में कुछ फुसफुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।)

गृहस्वामिनी : लीजिए।

(युवक पैड लेकर सबको कागज दे देता है। दोनों लड़कियां कागज लेती हैं और फिर रख देती हैं। मोटी रमणी भी कागज ले लेती है पर फौरन कहती है—)

मोटी रमणी : मैं—मैं—तो नाम लूंगी।

गृहस्वामिनी : (कागज लेती हुई) अरे कागज ! लाओ बेटी।

(लड़कियाँ झेंपती हुई कागज उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फाउण्टेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी (अपनी माता) को दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।)

मोटी रमणी : तुम भी कागज ले लो, राजाजी !

युवक : मैं तो नाम लूंगा।

मोटी रमणी : (पेंसिल उठाते हुए) अच्छा।

युवक : (सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या कहूँ ? (हँसता है) अच्छा 'कमरा'। (सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा, 'बिजली'। (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा-अच्छा 'पेरम्बुलेटर'। (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा अब क्या—अच्छा, 'सेक्स'।

गृहस्वामी :
मोटी रमणी : }——सेक्स !!

युवक : हाँ, हाँ !

गृहस्वामी : क्यों, सेक्स ?

युवक : यह भी लफ्ज है। आपने कहा था बिना सोचे नाम लो।

(सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा बस।

(सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज मेज पर रखती हैं। सबसे बाद में गृहस्वामी।)

मोटी रमणी : **(कागज उठाती हुई)** मैं पढ़ूँगी **(कागज उलटती-पलटती है)** सबसे पहले मिस्टर सिबल का पर्चा है।

(पर्चा उठाकर, सब गौर से सुन रहे हैं।)

मकान : 'जिम्मेदारी', ठीक ! बिजली, क्या लिखा है, हाँ,—दिमाग ? बिलकुल ठीक, दिमाग ने ही तो ऐसी चीजें निकाली हैं। पेरम्बुलेटर—'शादी' वाह-वाह; मिस्टर सिबल ! **(गृहस्वामी भद्दा झेंपता है)** अच्छा सेक्स—'साइंस', बहुत खूब। अब किसका कागज है, मिसेज सिबल का ?

गृहस्वामी : मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा।

मोटी रमणी : नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिए।

गृहस्वामिनी : मेरा बाद में पढ़ियेगा।

गृहस्वामी : पढ़ने न दो कुसुम !

मोटी रमणी : अच्छा कमरा—'बाथरूम'।

गृहस्वामी : बाथरूम, बाथरूम क्यों ?

युवक : खैर, यह भी तो कमरा है।

गृहस्वामिनी : अच्छा।

मोटी रमणी : बिजली—'अँधेरा'।

गृहस्वामी : हैं ?

गृहस्वामिनी : बिजली फेल हो जाती है, तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूंढ़नी पड़ती हैं ?

गृहस्वामी : कुसुम, यह क्या है ? बेबी क्या पेरम्बुलेटर पर चढ़ने के काबिल है ? मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश मारे देती हो।

गृहस्वामिनी : मैंने तो बेबी लिखा था। अपना बेबी थोड़ी। तुम्हीं ने कहा था बिना सोचे।

मोटी रमणी : अच्छा सेक्स—'शाह नजफ रोड'।

गृहस्वामी : यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी : (अपराधिनी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे ......

गृहस्वामी : तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी : कुछ नहीं मैंने वैसे ही लिख दिया।

गृहस्वामी : वैसे ही ? सेक्स—'शाह नजफ रोड'। वाह-वाह !

युवक : पापा, यह तो खेल है। अच्छा अब अगला पढ़िए।

गृहस्वामी : नहीं, इसे साफ हो जाने दीजिए। सेक्स, 'शाह नजफ रोड' वाह-वाह ! (उठकर) इसके माने क्या हैं ?

युवक : पापा, यह तो खेल है।

(मोटी रमणी सब कागज रख देती है। लड़कियां अपना कागज उठा लेती हैं। युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है।)

युवक : मैं कहता था ......

गृहस्वामी : कमरा—'बाथरूम', सेक्स—'शाह नजफ रोड'। क्या कहना है !

(सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे हैं; केवल युवक कुछ व्यग्र है। पांच ही मिनट बाद जरा-सा परदा खिसकाकर भीतर से नौकर कहता है— मेज लगाऊं 'हुजूर')

गृहस्वामिनी : हाँ, हाँ। (तेजी से उठकर भीतर चली जाती है। भीतर से उसकी आवाज सुन पड़ती है—बेबी आ गया? नहीं आया अभी?)

(मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं। युवक और गृहस्वामी रह जाते हैं, दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है। युवक व्यग्र, बरामदे की तरफ, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं।)

ट्यूटर : (अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था।

युवक : आप क्या यहीं बैठे थे?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : यहीं बरामदे में?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : हूँ! (टहलता है। ट्यूटर अपनी सब जगहों में किताब खोजता है।)

युवक : आज पापा से आपकी बातचीत हुई?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : क्या बातचीत हुई?

ट्यूटर : कुछ नहीं—उन्होंने कहा कि आनेवाली जेनरेशन चाहे बिल्लियों की हो या सांपों की, पर हम से अच्छी होगी।

युवक : (चौंककर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा?

ट्यूटर : मिस्टर सिबल ने।

(युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है और वह एक कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर सुलगाता है।)

(पटाक्षेप)

खिड़की की राह

जगदीश चन्द्र माथुर

पात्र

दिलीप

चन्दू

प्रवीण

उर्मिला

(कमरे की दीवारें आसमानी रंग की हैं और उसमें पर्दे, पलंगपोश, मेजपोश, कुर्सियों की गद्दियां भी लगभग उसी रंग से मेल खाती हैं। सामने वाली दीवार में दाहिनी ओर एक चौड़ी और नीची खिड़की है, जिसके नीचे एक छोटा स्टूल है! बायें कोने में एक लकड़ी के फ्रेम वाला पर्दा इस तरह रखा है कि उसकी आड़ में कपड़े वगैरह बदलने का प्रबन्ध रहे। पर्दे और खिड़की के बीच में एक फैशनेबल पलंग है, जिस पर एक सुन्दर पलंगपोश बिछा है। एक वार्ड्रोब के ढंग की आलमारी भी है और इधर-उधर कुछ कुर्सियां और छोटी मेजें हैं, फूलदान भी हैं। बायीं तरफ बाथरूम में जाने का रास्ता है, और दाहिनी तरफ बाहर के कमरे में जाने का। पर्दा उठने पर कमरे में बहुत हल्का प्रकाश जान पड़ता है, क्योंकि बिजली बन्द है और खिड़की में से ही बरामदे के बल्ब की रोशनी आ रही है। बल्ब और बरामदे के खंभे का अंश खिड़की में दीख पड़ता है, जिससे मालूम होता है कि खिड़की के पीछे बरामदा है। कमरे में कोई नहीं है। बाथरूम की ओर कुत्ते के जोर-जोर से भूंकने की, फिर कुछ टकराने की आवाज आती है। कुछ देर बाद बदहवासी की हालत में दिलीप का प्रवेश। चुस्त पाजामा, बन्द गले का कोट, जिसके बटन ऊपर से खुले हुए हैं। हाथ में वायलिन का केस)

दिलीप : मैं कहता हूं जनाब कि अगर आपको एक आर्टिस्ट को बुलाना था तो बाहर कुत्ता क्यों रखा और वह भी इतना खूंखार! (चारों तरफ देखकर) अरे यहां तो कुछ भी नहीं ... यह कैसी दावत है? प्रिंसिपल साहब ने कहां फंसा दिया? (पलंग पर बैठता हुआ) जब कुत्ता ऐसा है तो मालिक कैसे होंगे!

(दाहिनी ओर से चन्दू का प्रवेश, पोशाक बेरा की, यानी पाजामा, अचकन, कमरबन्द और पगड़ी। कन्धों पर

झाड़न। आते ही स्विच दबाते समय दिलीप की ओर पीठ करके खड़ा होता है, तभी दिलीप खखारता है और चन्दू चौंक कर घूमता है।)

चन्दू : कौन ?

(घूम कर देखता है ।)

दिलीप : (पलंग से उठता हुआ) मैं हीं हूं !—मैं !

चन्दू : लेकिन ... लेकिन आपको मैंने पहले इस घर में नहीं देखा। आप....

(दिलीप बात काट देता है और बराबर ऐसा करता है।)

दिलीप : तुम इस घर के नौकर हो न ?

चन्दू : जी, बेरा हूं !...लेकिन आप....

दिलीप : आज यहां छोटी-सी दावत है न ?

चन्दू : जी दावत तो है ! लेकिन आपको....

दिलीप : तो कहां है वह दावत ?

चन्दू : गोल कमरे में । यह तो पलंग-कमरा है।...लेकिन ....लेकिन आप हैं कौन ? आपका नाम, आपका....

दिलीप : वाह भाई ! तुम्हारे मालिक का खूंखार कुत्ता भी नाम पूछता है और तुम भी ! उससे बच कर तो पलंग-कमरे में घुसा, पर तुमसे बचना मुश्किल है।

चन्दू : लेकिन यह तो बताइए कि आप कौन....

दिलीप : उफ तुमने तो नाक में दाम कर दिया !...देखते हो यह वायलिन ?

चन्दू : बाजा ?

दिलीप : हां बाजा !...सुनो दोस्त मैं बाजा बजाता हूं, तुम हाजिरी बजाते हो !...हम तुम दोनों आर्टिस्ट हैं !.... मिलाओ हाथ इसी बात पर !

(चन्दू का हाथ पकड़ कर हिलाता है।)

नेपथ्य से : बेयरा, बेयरा !

चन्दू : गजब हो गया ! अरे हाथ छोड़िए ! साहब आयेंगे तो कहेंगे, अपने यारों को बेड-रूम में बुलाता हूं !

दिलीप : तो मुझे गोल कमरे में पहुंचाओ न !

नेपथ्य से : बेयरा, बेयरा !

(किसी के आने की पद-चाप)

चन्दू : आया हुजूर !...अच्छा चलिए इधर से !

दिलीप : खिड़की में से ? यह भी ठीक ! (खिड़की की तरफ बढ़ता हुआ) जानते हो दोस्त, समाज किसके काबू में आता है ?

(खिड़की के उस पार कूद जाता है ।)

चन्दू : (वायलिन केस पकड़ाते हुए) यह लीजिए अपना बाजा !

दिलीप : (झांकता हुआ) समाज उसके आगे झुकता है जो खिड़की की राह कूद कर उसे दबा सके । जिसने दरवाजा पकड़ा, वह तो उसका गुलाम है, गुलाम ! समझे ?

(गायब हो जाता है ।)

चन्दू : अजब आदमी है !

(खिड़की बन्द करता है । प्रवीण का प्रवेश । सूट पहने है, शक्ल सूरत में भव्य, बातचीत करते समय दोनों हाथ मलने की आदत है ।)

प्रवीण : कौन अजीब आदमी है जी बेयरा ? ... आओ उर्मिला, तुम्हारी मुलाकात इस घर के स्तम्भ से कराऊं !

(उर्मिला का प्रवेश । सुन्दर, इकहरा, प्रफुल्ल बदन)

— : यह है मेरा बेयरा !

चन्दू : सलाम हुजूर !

उर्मिला : सलाम !

प्रवीण : काम अच्छा करता है और उम्मीद है, आगे भी करेगा !

उर्मिला : ए बैचलरज बियरर ! **(दोनों हंसते हैं ।)** क्या नाम है तुम्हारा ?

चन्दू : चन्दू !

प्रवीण : अच्छा चन्दू ! गोल कमरे में जाकर देखो, अगर कोई बाबू म्यूजिक कॉलेज से आये हों तो उनसे कहना कि मेहमानों के आते ही कुछ चीज शुरू कर दें ।

चन्दू : **(प्रश्नसूचक मुद्रा)** चीज शुरू कर दें ?

प्रवीण : हां, गाना-बजाना शुरू कर दें !

चन्दू : बजाना !...बाजा !...बाजा..तो...वह....बाबू....

प्रवीण : हां, और देखो खाने की मेज को ठीक वैसे तैयार कर दो जैसे मैंने बताया है । समझे !

चन्दू : हुजूर !

(प्रस्थान)

उर्मिला : देखती हूं बड़ी तैयारियां हैं । मैंने तो समझा था मुझे ही डिनर पर बुलाया है !

प्रवीण : उर्मिला यह डिनर ही नहीं, 'इन्ट्रोक्शन नाइट' भी है ।

उर्मिला : न बाबा ! कॉलेज की इन्ट्रोडक्शन नाइट मुझे अब भी याद है !

प्रवीण : वह नहीं ! तुम्हें इस शहर में आये एक हफ्ता हुआ है ! सोचा तुम्हें आज अपने दोस्तों से ही मिला दूं !

उर्मिला : मुझे पहले से बता दिया होता तो ....

प्रवीण : तो क्या ?

उर्मिला : साड़ी तो बदल आती !

प्रवीण : उसके लिए सब इन्तजाम है । यह देखो उर्मिला ।

[आलमारी खोलकर एक केस निकालता है, उसे खोलकर एक कीमती साड़ी दिखाता है ।]

उर्मिला : ओ ! हाऊ लवली !!

प्रवीण : और यह पेटीकोट और ब्लाउज और ब्रेसियर !

उर्मिला : प्रवीण तुम बड़े नटखट हो !

प्रवीण : तुम तो जानती ही हो कि मेरा कोई काम अधूरा नहीं होता। देखो यह नेकलेस इस साड़ी के साथ कैसी जायगी ?

(नेकलेस निकालता है।)

उर्मिला : यह सब मेरे लिए ?

प्रवीण : यह भी तो ....

उर्मिला : पौडर बाक्स ! और हर एक चीज मेरे मन चाहे रंग की !!

प्रवीण : रंग ? तुमने बैठक के पर्दों और सोफा-सेट पर गौर किया ?

उर्मिला : हां, सभी गुलाबी रंग के हैं। और देखती हूं कि इस बेड-रूम में आसमानी की ही बहार है ! प्रवीण, मुझे न मालूम था तुम्हारे अन्दर कलाकार भी मौजूद है !

प्रवीण : जब मेरी प्रियतमा आर्टिस्ट हो तो मैं इतना भी न करूं ? देखो, दीवारों पर मैंने इतनी सब जगह छोड़ दी है, तुम्हारी पेंटिंग्ज के लिए ! सोच लो कहां कौन-सी तस्वीर टंगेगी।

उर्मिला : जान पड़ता है शीघ्र ही तुम्हारी भी पेंटिंग्ज यहां टंगेगी।

प्रवीण : मैं और पेंटिंग ! **(हंसता है)** लेकिन उर्मिला एक तरह से तुम्हारा कहना ठीक है ! मैं भी आर्टिस्ट हूं ... द आर्टिस्ट इन लाइफ **(खिड़की के सहारे खड़ा होता है और तैयार किये हुए भाषण के ढंग से बोलता है)** संगतराश की तरह मैं नाप-जोख कर, चुन-चुनकर अपने जीवन का डिजाइन तैयार करता हूं, मेरा हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, साफ-सुथरा; मैं माली की तरह अपने चारों ओर फूल-पौधों को तराश कर, संवार कर, रखना पसन्द करता हूं ... मैं ....

उर्मिला : उफ् फोह, आज तुम बोली भी अनोखी बोल रहे हो ! संगतराश, जौहरी, माली !! **(हंसती है)** जान पड़ता है यह मेरी भी इन्ट्रोडक्शन नाइट है और तुम्हारी भी !

प्रवीण : (वही स्वर) शायद तुम ठीक कह रही हो, उर्मिला अभी तक शायद मैं तुम्हारे लिए कुछ पहेली-सा बना रहा था ! लेकिन . . .

उर्मिला : हम दोनों बराबर एक-दूसरे के लिए पहेली-सी बने रहें और रोज नयी पहेलियां सुलझाते रहें, इसी में तो आकर्षण है !

प्रवीण : शादी के बाद भी, उर्मिला ?

उर्मिला : तभी तो हमारा वैवाहिक जीवन हरा-भरा और सरस रहेगा !

प्रवीण : हूं ! (रुक जाता है) लेकिन शादी के पहले एक दूसरे को समझ लेना भी ठीक है !

उर्मिला : जिस दिन समुद्र के किनारे हम दोनों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ा, उसी दिन हम एक दूसरे को समझ गये थे न ?

प्रवीण : उर्मिला, जिस तरह मैं तुम्हारा अनन्य प्रेमी रहा हूं, वैसे ही मैं एक आदर्श पति बनना चाहता हूं !

उर्मिला : कैसे तुम्हें बताऊं कि मैं अपने को कितनी भाग्यवती समझती हूं ?

प्रवीण : बीसियों किताबों में पढ़ चुका हूं कि पति की स्वार्थपरता और नासमझी के कारण वैवाहिक जीवन असह्य हो जाता है। छोटी-छोटी बातों की विषमता सारे दाम्पत्य-जीवन को विषमय बना देती है ! सो मैं वैसा अवसर ही न आने दूंगा उर्मिला !

उर्मिला : यदि ऐसे अवसर आयेंगे, तो भी हम लोगों को कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती !

प्रवीण : बचपन से ही मैंने यह सबक़ सीखा कि जो समाज के ढांचे में अपने को ढाल सके, सफलता उसी की है ! समाज फूल है तो कुटुम्ब फल ! पति और पत्नी के उत्तरदायित्व के लिए मैंने अपने को ट्रेन किया है !

उर्मिला : (कुछ मुस्करा कर) सुनूं तो कौन-सी वह सुन्दरी थी जिससे तुम्हें ट्रेनिंग मिली ?

(हंसती है ।)

प्रवीण : मजाक न करो उर्मिला ! जब कभी मैं जीवन के आदर्श की सतह पर से बातें करता हूं तब मजाक मुझे आंख की किरकिरी-सा लगता है !

उर्मिला : सॉरी प्रवीण, वेरी सॉरी !

प्रवीण : लेकिन इस बहाने मुझे एक महत्त्वपूर्ण बात कहने का मौका मिला । दाम्पत्य-जीवन की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही है कि पति अपनी पत्नी का विश्वास कायम रख सके ! मैं तुम्हें कभी शिकायत का मौका न दूंगा उर्मिला !

(बाहर से वायलिन पर अत्यन्त सुन्दर, बहार रागिनी की ध्वनि)

उर्मिला : यह बाहर से वायलिन की आवाज कैसे आ रही है ?

प्रवीण : मैंने सोचा, पार्टी में कुछ संगीत भी रहे ? सो म्यूजिक कॉलेज के प्रिंसिपल से एक आदमी को भेजने के लिए कह दिया था । वही होगा । (खिड़की खोलता है । स्पष्ट और सुमधुर बहार रागिनी का स्वर) जान पड़ता है सब लोग आ गये !

उर्मिला : बड़ा सुन्दर वायलिन बज रहा है !

प्रवीण : तुम्हें क्लासिकल संगीत पसन्द है न ? मैं तो उसका सिर-पैर कुछ जानता नहीं हूं, लेकिन तुम्हारे लिए तरह-तरह के रिकार्ड मंगा कर रख रहा हूं . . . फैयाज खां, हीराबाई बड़ोदकर, रविशंकर वगैरह, वगैरह !

उर्मिला : प्रवीण मुझे कभी-कभी लगता है . . . .

प्रवीण : क्या ?

उर्मिला : लगता है कि क्या मैं तुम्हारे योग्य भी हूँ !

प्रवीण : योग्य . . . .

(वायलिन बन्द हो जाता है और कुछ खटपट की आवाज आती है।)

—: हैं। यह वायलिन एक साथ बन्द कैसे हो गया ? और यह आवाज ! कुछ गड़बड़ जान पड़ती है ! चलूं देखूं !

उर्मिला : मैं भी चलूं ?

प्रवीण : ऐसे नहीं, इस कोने में जो पर्दा है न, उसके पीछे जाकर यह नयी साड़ी और जेवर पहन लो। तभी अपने दोस्तों से तुम्हारा परिचय कराऊंगा।

(बैठक से भगदड़ की आवाज आती है।)

— : देखूं क्या मामला है !

(प्रवीण का प्रस्थान। उर्मिला कुछ पसोपेश में कुछ सोचती-सी साड़ी, ब्लाउज, जेवर उठा कर देखती है। फिर पर्दे के पीछे चली जाती है। थोड़ी देर बाद बरामदे में कुछ हलचल और फिर खिड़की में से दिलीप कुछ परेशानी में झांकता नजर पड़ता है। देखता है कि कमरे में कोई है तो नहीं। फिर कूद कर अन्दर आ जाता है और खिड़की बन्द कर लेता है। फिर दाहिना दरवाजा बन्द कर सिटकनी लगा देता है।)

दिलीप : **(दबे स्वर में)** बस अब इधर बाथरूम की तरफ से रफू-चक्कर हो जाता हूं।

(बाथरूम की ओर बढ़ता है, ज्योंही पर्दे के बराबर से निकलता है, एक साड़ी उसके ऊपर आ पड़ती है।)

दिलीप : ऐं साड़ी ! **(ब्लाउज आ पड़ता है)** यह क्या ब्लाउज ? हे परमात्मा ! अब खैर नहीं ! देखूं, इस पर्दे के पीछे कौन है ?

(पर्दा हटा कर झांकता है। उर्मिला चीखती है। पीछे हट जाता है।)

दिलीप : आई बेग योर पार्डन ! क्षमा कीजिए देवी जी !

(सकपका कर बाथरूम की तरफ जाता-जाता रुक जाता है। उर्मिला थोड़ी देर में गुस्से में बाहर आती है।)

उर्मिला : आप आदमी हैं या हैवान ? देखते नहीं हैं कि एक महिला कपड़े बदल रही है और आप अन्दर घुसे चले आ रहे हैं !

दिलीप : माफ कीजिएगा, मैंने समझा कि यह बेचलर का कमरा है !

उर्मिला : आखिर आप हैं कौन ?

दिलीप : अगर मैं पूछूं कि आप कौन हैं तो गुस्ताखी तो नहीं होगी ?

उर्मिला : (अनसुनी-सी) जी ?

दिलीप : बात यह है कि मैंने सुन रखा था कि इस घर के मालिक कुंआरे हैं ! मुमकिन है मैंने गलत सुना हो !

उर्मिला : (अवहेलना भरे स्वर में) जी ! (दरवाजे के करीब जाकर धक्का लगाती हुई) यह दरवाजा आपने बन्द किया है ?

दिलीप : जी ! उसे खोलिये मत ! (फिर उसी स्वर में) तो आप लोगों का गंधर्व-विवाह ....

उर्मिला : (सरोष) जी नहीं ! न हमारा विवाह हुआ है, न गंधर्व-विवाह ! आपसे मतलब ?

दिलीप : ठीक !

(गहरी सांस लेता है।)

उर्मिला : इसके क्या मानी ?

दिलीप : यही कि अब मुझे इतमीनान है !

उर्मिला : आपका इतमीनान तो अभी ठिकाने किये देती हूं ! (खिड़की की ओर जाकर) यह खिड़की भी आपने ही बन्द की है ?

(खोलने का प्रयत्न करती है।)

दिलीप : हैं, हैं, उसे न खोलिए ?

उर्मिला : खिड़की को भी न खोलूं, दरवाजे को भी न खोलूं, (रुककर) क्यों ?

दिलीप : इसलिए कि जहां आपने इन्हें खोला, वहां मैं बाथरूम की राह से रफू-चक्कर हुआ ! और मेरे यहां से चले जाने से आपका मतलब पूरा नहीं होगा !

उर्मिला : मेरा मतलब ?

दिलीप : आपका तो मतलब यही है न कि मुझे मिस्टर . . . क्या नाम उसका . . . . मिस्टर . . . .

उर्मिला : प्रवीण चन्द्र !

दिलीप : जी, मुझे मि० प्रवीण चन्द्र के हवाले कर दें, यही न ?

उर्मिला : जितनी देर से आप बातों में उलझे हैं, उतनी देर में आप यहां से भाग सकते थे !

दिलीप : आपकी शंका ठीक है ! **(बैठता हुआ)** मगर असल बात यह है कि मैं यहां से जाना नहीं चाहता !

उर्मिला : हूं ! इसके बाद आप कहेंगे कि आप मुझसे प्रेम करते हैं ! . . . .

दिलीप : इतनी जल्दी नहीं मिस . . . .

उर्मिला : उर्मिला !

दिलीप : जी ! मिस उर्मिला इतनी जल्दी नहीं ! मुझे थोड़ा वक्त दीजिए !

उर्मिला : आप न सिर्फ बदतमीज हैं, बल्कि अपने आपको कुछ समझते भी हैं !

दिलीप : यदि आपने भी मेरी तरह एक-एक करके चार मूर्खों के मुंह पर तड़ातड़ चार थप्पड़ लगाये होते तो आप भी अपने आपको कुछ समझतीं!

उर्मिला : चार मूर्ख कौन ?

दिलीप : आपके मि० प्रवीण चन्द्र के चार दोस्त, जो उनकी बैठक में विराजमान थे !

उर्मिला : **(आश्चर्य से)** आपने उनको थप्पड़ लगाये ? . . . . आप हैं कौन मिस्टर . . . . .

दिलीप : मिस्टर दिलीप कुमार ! सुनिए मिस ... उर्मिला (**रुक कर लाचारी के स्वर में**) लेकिन क्या फायदा ? कहीं आपके भी कान उन्हीं लोगों की तरह संगीत के लिए बहरे हुए .... नहीं .....

उर्मिला : संगीत ! तो क्या आप ही थोड़ी देर हुए वायलिन पर बहार बजा रहे थे ?

दिलीप : (**आवेशपूर्ण उत्साह से उर्मिला का हाथ पकड़ कर मानो उससे पहली जान-पहचान हो**) वायलिन पर बहार ! ... सच ? तो क्या सच आप राग-रागिनियां समझती हैं ? उफ्फोह ! आपने अब तक बताया क्यों नहीं ?

उर्मिला : (**हाथ छुड़ाते हुए**) अगर बता देती तो आप क्या करते ?

दिलीप : क्या करता ? कह नहीं सकता ! शायद अपनी अधूरी रागिनी को पूरा करता ! सच कहता हूं मिस उर्मिला, उस रागिनी को तोड़ते हुए मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था ! लेकिन मजबूरी ! मैं तो बहार की मौजों में बहा जा रहा था, समां बंधने वाला था, पर वे चार अहमक बातें किये जा रहे थे, लगातार वे ही छिछली-ओछी बातें, वही बेहूदेपन की हंसी ! और मुझसे कला की यह बेकदरी देखी न गयी ! वायलिन एक तरफ रख कर मैं उन लोगों के पास गया और बिना कुछ पूछे और कहे, मैंने चार तमाचे चारों के मोटे-मोटे गालों पर रसीद कर दिये ! कहिए ठीक किया न ?

उर्मिला : (**हंसी दबाते हुए**) ताज्जुब है कि उन लोगों ने आपको घेर कर वहीं आपकी खबर नहीं ली !

दिलीप : जब तक कि वे सम्हलें, मैं चम्पत हो चुका था। वे मेरे पीछे बाहर की ओर भागे और मैं उन्हें चकमा देकर चला आया

इधर, इस इरादे से कि पिछवाड़े से रफूचक्कर हो जाऊंगा ! लेकिन आपने तो मेरा प्रोग्राम ही ढेर कर दिया !

(पलंग पर रखी हुई एक पुस्तक उठा लेता है और उसके पन्ने उलटने लगता है। क्षणिक मौन, जिसमें उर्मिला अनायास दिलीप की ओर पल भर को ईषत् मुस्कानपूर्ण दृष्टिपात करती है। लेकिन तुरन्त ही सम्हलकर, जैसे कुछ याद आया हो—)

उर्मिला : अच्छा, तो अब आप जा सकते हैं, क्योंकि मुझे लगता है कि वे इधर ही आ रहे हैं और तब मुझे दरवाजा खोलना ही होगा !

दिलीप : वे ?

उर्मिला : मिस्टर प्रवीणचन्द्र !

दिलीप : मि० प्रवीण चन्द्र ओह ! मिस उर्मिला, जिस व्यक्ति के दोस्त ऐसे वहशी हैं कि उनके सामने एक मधुर और कलापूर्ण रागिनी बजे और वे सुनना तो अलग, चुप भी न रहें, मेढकों की भांति टर्र-टर्र करते रहें ... ऐसे व्यक्ति के साथ आपको अकेला छोड़ दूं ? नामुमकिन ! ... ऐसे व्यक्ति की तो छाया भर आपके कलाप्रिय हृदय की पंखड़ियों को कुम्हला देगी, टुकड़े-टुकड़े कर देगी !

उर्मिला : मि० दिलीप कुमार, शायद आप नहीं जानते कि मि० प्रवीण चन्द्र से शीघ्र ही मेरी शादी होने वाली है।

दिलीप : शादी ! आपकी, **(रुकता है, फिर उर्मिला की ओर देखता है। मानो उस दृष्टि में किसी नूतन रहस्य का आभास मिला हो, ऐसी मुस्कराहट के साथ)** हाँ, यदि उनके साथ आपकी शीघ्र ही शादी होने वाली है तब तो मेरा-आपका अकेले बन्द कमरे में उनके द्वारा पाया जाना शायद ठीक न होगा ! .... अच्छा तो मैं चलता हूं—

उर्मिला : (सहसा मानो आग्रह के साथ) .... आ .... आप .... सच ही जा रहे हैं ?

दिलीप : जी ! नमस्ते !

उर्मिला : (कुछ रुक कर) नमस्ते !

(दिलीप का बाथरूम की ओर से प्रस्थान। उर्मिला उसको जाते हुए देखती है और जब उसकी पीठ मुड़ जाती है, तब मानो उसको रोकने के लिए इशारा-सा करती है, मगर हाथ उठा ही रह जाता है ! कुछ देर तक ध्यान-मग्न, फिर उठती है और खिड़की खोलती है ! उसी समय बायीं ओर से दिलीप का पुनः प्रवेश)

दिलीप : मिस उर्मिला !

उर्मिला : (सिर घुमाकर) आप फिर आ गये ?

दिलीप : देखिए, एक तो इसी तरफ प्रवीण बाबू का खूखार कुत्ता घूम रहा है ! दूसरे, जब मेरी जान से भी प्यारी वस्तु यहां रह गयी तो जाना फिजूल था !

उर्मिला : (सस्मित) सुनूं तो कौन है आपकी सब से प्यारी वस्तु ?

दिलीप : (बनावटी हिचकिचाहट) मेरा मतलब .... मेरा मतलब तो..... मेरा मतलब तो महज ... महज अपने वायलिन से था !

उर्मिला : (निराश स्वर) ओ !

दिलीप : भला मिस उर्मिला, एक म्यूजिशियन अपने साज को बेकदरों के घर में कैसे छोड़ कर जा सकता है ?

(बाहर से कोई दरवाजे पर दस्तक देता है।)

उर्मिला : (चिन्तित स्वर) आपका वायलिन आपको भी ले डूबेगा और मुझे भी ! सुनिए, प्रवीण बाबू आ गये !

दिलीप : आप दरवाजा खोल दीजिए; मैं जा रहा हूं ! ..... (जाते-जाते रुक जाता है) लेकिन एक बात है !

उर्मिला : जल्दी कीजिए !

दिलीप : थोड़ी देर के लिए इस पर्दे के पीछे खड़े होकर जरा प्रवीण बाबू की आवाज तो सुन लूं। फिर उधर ही से बाथरूम के रास्ते से बाहर हो जाऊंगा। आपको कोई एतराज न होगा ?

उर्मिला : आप कायर भी हैं !

(फिर दस्तक 'उर्मिला, उर्मिला !')

दिलीप : **(हंसता हुआ)** यह तो बाद में पता चलेगा कि कौन कायर है **(पलंग वाली पुस्तक हाथ में लेकर उसी पर्दे के पीछे चला जाता है, जिसके पीछे उर्मिला ने कपड़े बदले थे।)**

उर्मिला : खूब !

(प्रवीण का प्रवेश)

प्रवीण : उर्मिला, मुझे क्षमा करो ! मैं बहुत शर्मिन्दा हूं कि इतनी देर तक तुम्हें अकेला छोड़ कर मकान के बाहर चला गया ! क्या कहूं अजब गड़बड़झाले में पड़ गया !

उर्मिला : मैंने तो समझा कि कॉलेज की ही तरह वहां भी 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' होने वाली है !

प्रवीण : अरे, भाई, एक पागल की हरकतों ने मेरा सारा प्रोग्राम चौपट कर दिया !

उर्मिला : पागल ?

(परदे की तरफ देखती है।)

प्रवीण : हां, म्यूजिक कॉलेज के प्रिंसिपल ने न जाने किस हैवान को वायलिन बजाने के लिए भेज दिया था ! मैंने तो अब तक उसकी शक्ल भी नहीं देखी !

उर्मिला : वायलिन तो अच्छा बजा रहा था !

प्रवीण : लेकिन उस जाहिल को क्या हक था कि मेरे चारों दोस्तों के मुंह पर तमाचे लगाकर चलता बने ? उर्मिला, मेरे चारों दोस्त नाराज होकर चले गये ! मैं उस कमबख्त के पीछे-पीछे

भागा, लेकिन वह ऐसा गायब हुआ कि दूर तक नामोनिशान भी नहीं !

उर्मिला : जब आपने उसकी शक्ल ही नहीं देखी तो ढूंढ़ कैसे पाते ?

प्रवीण : उर्मिला मैं उस वक्त बहुत परेशान था **(ऊंचे स्वर में)** बेयरा ... बेयरा ... ।

चन्दू : **(नेपथ्य से)** आया हुजूर !

(बेयरा का प्रवेश)

प्रवीण : कुछ पता लगा ?

चन्दू : नहीं हुजूर ! बहुत तेज भागा मालूम देता है ! लेकिन अपना बाजा छोड़ आया है, ले आऊं ?

प्रवीण : अबे अहमक, मैं बाजे का क्या करूंगा, गधा ! **(गुस्से पर लगाम लगाता हुआ उर्मिला से)** मुझे माफ करो, मैं इस वक्त आपे में नहीं हूं उर्मिला !

उर्मिला : कुछ दवा ले लो . . . एसप्रीन वग़ैरह !

प्रवीण : दवा से ज्यादा मुझे मानसिक दवा की जरूरत है। **(पलंग पर कुछ खोजता है)** बेयरा, वह किताब कहाँ गयी ?

चन्दू : वही जो आप रोज़ सवेरे पढ़ते हैं ? यहीं रखी हुई थी हुजूर ! **(पलंग पर खोजता है)**

प्रवीण : देखो उधर पर्दे के पीछे तो नहीं पड़ी हुई है ?

(चन्दू पर्दे की ओर बढ़ता है। उर्मिला झट से उसे मना करती हुई बोलती है :)

उर्मिला : नहीं, नहीं, किताब वहाँ नहीं है।

(चन्दू रुक कर उसकी ओर देखता है।)

प्रवीण : तो क्या तुमने वह किताब देखी है ?

उर्मिला : हाँ-हाँ...वही न ? यहीं पड़ी हुई थी ए...ए...क्या नाम है उसका . . . ?

(सहसा पर्दे के पीछे से दिलीप निकलता है, हाथ में पुस्तक लिये हुए। चेहरे पर मुस्कराहट)

दिलीप : पुस्तक का नाम है, 'सफल जीवन की कुंजी !' माफ कीजिएगा, जनाब, आपकी यह गीता मैंने आपके पलंग पर से उठा ली थी...बड़ी लाजवाब चीज है। आप शायद उसके तीसरे अध्याय का ख्याल कर रहे हैं ?...लीजिए आपके काम की चीज पढ़ कर सुनाए देता हूं। (पढ़ता है) वैवाहिक जीवन में पुरुष को अपने मिजाज पर काबू रखना बहुत जरूरी है, क्योंकि परेशान मिजाज वाला पुरुष अपनी स्त्री को न तो सन्तुष्ट कर पाता है और न उस पर ठीक तौर पर काबू रख सकता है। जैसा हम पहले कह आए हैं, वैवाहिक जीवन भी एक कला है। पुरुष को संगतराश की तरह नाप-जोखकर, चुन-चुनकर अपने जीवन का डिज़ाइन तैयार करना है, उसका हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, माली की तरह उसे अपने . . .

उर्मिला : अरे . . . ठीक यही शब्द तो प्रवीण बाबू मेरे सामने आज कह रहे थे।

चन्दू : (जो अब तक सकपकाकर सब कुछ देख-सुन रहा था) अरे हुजूर, यह तो वही आदमी है !

प्रवीण : कौन ?

दिलीप : ठहरो, दोस्त, मैं खुद बताये देता हूं ! बात यह है प्रवीण बाबू कि मैं और आप का नौकर पुराने दोस्त हैं, फेलो आर्टिस्ट्स !

प्रवीण : तो यह किताब तुम्हारे हाथ में कहां से आयी ? तुम . . . तुम आये कहां से ? उर्मिला, तुम्हें मालूम है ?

चन्दू : अरे, हुजूर, यही तो वह बाजे वाला है !

प्रवीण : बाजे वाला ?

दिलीप : (चन्दू से) उफ्फोह, दोस्त ! तुमने तो सारा मजा ही किरकिरा कर दिया ! मैं तो वही बात बताने वाला था, लेकिन जरा तकल्लुफ के साथ, जरा कलापूर्ण ढंग से ! (प्रवीण बाबू से) प्रवीण बाबू, मैं ही आज रात का हीरो हूं ! मैंने ही आपके दोस्तों के मोटे-मोटे गालों पर चार भरपूर तमाचे लगाये हैं और मुझे खुशी है कि इस तरह मैंने जहालत के खिलाफ खूबसूरती की ओर से बगावत का झंडा उठाया ! क्यों, ठीक है न मिस उर्मिला ! आप तो पहले से ही मेरी बात को मानती हैं ।

प्रवीण : पहले से ? तो क्या तुम इस शख्स को पहले से जानती थीं उर्मिला ?

उर्मिला : (कुछ रुक कर) हां, मैं इस शख्स को बहुत पहले से जानती हूं, इतना पहले से कि यह भी याद नहीं पड़ता कि कब मैं इन्हें नहीं जानती थी !

दिलीप : (विस्मित) ऐं ?

उर्मिला : (दिलीप की ओर विजय-भाव से देखती हुई) जी !

(प्रवीण इस आघात से मानो आहत हो निःशब्द हो जाता है । थोड़ी देर के लिए सब लोग चुप हैं । फिर इस अस्वाभाविक शान्ति को तोड़ता हुआ चन्दू खखारता है ।)

चन्दू : हुजूर, इनका बाजा ले आऊं ?

प्रवीण : (मानो जागा हो) ऐं, बाजा ! हां, इनका वायलिन ले आओ । (चन्दू जाता है) उर्मिला, क्या मैं एक सवाल

तुमसे पूछ सकता हूं ? (उर्मिला चुप) एक ऐसे विचित्र व्यक्ति से इतनी पुरानी जान-पहचान होने पर भी तुमने मुझसे इनका अब तक जिक्र भी करना मुनासिब नहीं समझा ! सो क्यों ?

उर्मिला : अगर मैं तुम्हें यह बता देती तो क्या इससे तुम्हारे निश्चय में कोई अंतर हो जाता ?

दिलीप : सवाल यह नहीं है उर्मिला देवी ! सवाल यह है कि इस किताब—'सफल जीवन की कुंजी' के पांचवें अध्याय में लिखा है कि **(पढ़ते हुए)** 'पुरुष और स्त्री को एक दूसरे से कोई भेद नहीं छिपाना चाहिए ।' जब आप लोगों की एक दूसरे से शादी होने वाली है तो प्रवीण बाबू आप से यह कैसे उम्मीद कर सकते थे कि आप उनसे इस लम्बी .... इतनी लम्बी जान-पहचान का जिक्र ही न करेंगी ? क्यों प्रवीण बाबू, मैंने आपकी बात को ठीक समझा न ?

उर्मिला : **(कृत्रिम झुंझलाहट से)** जी, आप इनकी बात भी ठीक तरह से समझते हैं और मेरी भी ! यानी आप खूब हैं !

दिलीप : हं, हं, हं ! उर्मिला देवी, आप जानती ही हैं कि स्त्री और पुरुष के जीवन को समझना मेरा एक तरह से पेशा हो गया है ! खास तौर से स्त्रियों को तो सिर से पैर तक समझे हुए हूं ।

प्रवीण : सिर से पैर तक ?

दिलीप : जी हां, दिल तक ही नहीं बल्कि....

उर्मिला : आखिर आपकी मंशा क्या है ?

दिलीप : मेरी मंशा ? अगर आप पूछती हैं तो उत्तर देना मुश्किल है, लेकिन अगर प्रवीण बाबू पूछते हैं तो मेरी मंशा है अपना वायलिन लेकर मैं रवाना हो जाऊं । अच्छा तो प्रवीण बाबू, बाहर से वायलिन लेकर मैं चलता हूं ।

(चलने को उद्यत)

प्रवीण : ठहरिए, अभी ठहरिए, और थोड़ा बैठ जाइए । (दिलीप

बैठता हूं) हालांकि मुझे आपका नाम नहीं मालूम है तो भी . . .

दिलीप : दिलीप कुमार !

प्रवीण : मिस्टर दिलीप कुमार, आपने मेरे दोस्तों को चपत लगा कर मुझे सख्त तकलीफ पहुंचायी, लेकिन एक तरह से आपने मेरा उपकार भी किया है।

दिलीप : उपकार ? तो क्या आप अच्छे संगीत की इज्जत करने लगेंगे ?

प्रवीण : संगीत ? साहब, संगीत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं !

दिलीप : अगर मेरी वजह से कला की इज्जत करना भी आप न सीखे तो भला मैंने आपका क्या उपकार किया ?

प्रवीण : मेरा इशारा उर्मिला और मेरे सम्बन्ध की ओर है। **(उर्मिला से)** उर्मिला, जीवन में जान-बूझकर मैं जोखिम लेना पसन्द नहीं करता और---**(कुछ रुक कर)** . . . और मि० दिलीप कुमार के कारण एक बात साफ हो गयी कि मेरा और तुम्हारा विवाह एक बड़े जोखिम वाला सौदा होगा !

उर्मिला : मनुष्य का तो सारा जीवन ही जोखिमों से भरपूर है।

दिलीप : लेकिन, उर्मिला देवी, इस पुस्तक यानी, 'सफल जीवन की कुंजी' के छठे अध्याय, पृष्ठ छियानवे पर लिखा है **(पढ़ता हुआ)** 'याद रखो, वैवाहिक जीवन में जोखिम लेना फूस के छप्पर पर आतिशबाजी से खिलवाड़ करने के मानिन्द है ! जिन्दगी का सबसे बड़ा उसूल . . . .

प्रवीण : मिस्टर दिलीप कुमार, मुझे शक होता है कि शायद आप इस बेशकीमती किताब का मखौल उड़ा रहे हैं।

दिलीप : इसे आप मखौल कहते हैं ? अरे साहब, मैं तो इसे एक ही निगाह में पढ़ गया और तभी खोज-खोजकर इसके मोती आपके सामने रख रहा हूं !

प्रवीण : और मुझे एक और शक हो रहा है। मालूम होता है कि आप उर्मिला से प्रेम करते हैं और उर्मिला आपसे !

दिलीप : **(पुस्तक के पन्ने जल्दी-जल्दी उलटता हुआ)** प्रवीण बाबू, आपकी इस अनोखी बात का तो हवाला इस किताब में कहीं नहीं मिलता, कहीं भी नहीं !

उर्मिला : आप इस किताब को इसके पुजारी को लौटा दीजिए !

दिलीप : **(चौंकने का अभिनय)** यानी ... आप भी इनके संदेह को सच मानतीं हैं ...

उर्मिला : चुप रहिए ! **(खड़ी होकर प्रवीण से)** प्रवीण तुम समझते हो कि इस तरह मेरे मत्थे दोष मढ़कर और खुद नादान बने रह कर तुम दुनिया को धोखा दे सकोगे और विवाह के बाद मुझे हमेशा के लिए दबा कर रख सकोगे, अपनी पवित्रता 'और नेकनीयती के ढकोसले के नीचे !

दिलीप : ठहरिए, जरा ...

उर्मिला : और शायद तुम्हारी इतनी हिम्मत इसलिए भी है कि मैं एक आधुनिक और ऐशपसन्द लड़की इस साधारण म्यूजिक-मास्टर से शादी करने का तो विचार भी मन में नहीं लाऊंगी, यही न तुम्हारी चाल है ? ... लेकिन मैंने तय किया है, अभी-अभी तय किया है कि इसी शख्स के साथ शादी करूंगी चाहे इसके पास कानी कौड़ी भी न हो !

दिलीप : **(शरारत भरी मुद्रा)** और मेरी भी तो मर्जी पूछ ली जाय !

उर्मिला : आप चुप रहिए !

प्रवीण : **(विनीत स्वर में मानो आवरण हट गया हो)** उर्मिला..... उर्मिला .....मैं भी तो तुमसे प्रेम करता हूं।

उर्मिला : **(हेय भाव से)** हूं ! **(बैठती है)** पुराने जमाने में कापालिक योगियों को अपनी योगसाधना पूरी करने के लिए आखिर में एक कुमारी की जरूरत पड़ती थी ! ऐसे ही शायद तुम्हें

मेरे प्रेम की जरूरत है ! जीवन के किनारे से तुमने कुछ कांच के टुकड़े उठा लिये हैं, जिन्हें तुम आदर्श कहते हो और जिन्हें जोड़-जोड़कर तुम अपने लिए एक दर्पण-सा बना रहे हो। क्या उस दर्पण की तुम्हारी छायामूर्ति को मैं असलियत समझूं ? तुम प्रेम करते हो, मुझ से नहीं, उस छायामूर्ति से जो तुम्हारा कार्टून है ! लेकिन मैं तो आदमी से शादी करना चाहती हूं, कार्टून से नहीं !

दिलीप : उर्मिला देवी ! मैं आपको जान-बूझकर जोखिम का काम नहीं करने दूंगा। मैं तो फक्कड़ हूं ! जिन्दगी मेरे लिए एक बहाव है, बस !

उर्मिला : मेरे लिए भी ! हम दोनों इस बहाव में बहेंगे, तिनकों की तरह नहीं, नौकाओं की तरह; जो लहरों पर आरूढ़ होती हैं !

प्रवीण : मेरी बर्दाश्त की सीमा गुजर चुकी है ! उर्मिला, मेरे मकान में मेरी ही भेंट की हुई साड़ी और जेवर पहनकर, तुम मेरे ही सामने इस गलियों में भटकने वाले व्यक्ति से सांठ-गांठ लगा रही हो !

दिलीप : यह क्या प्रवीण बाबू ? आप और इस तरह जामे से बाहर ? आपने तो इस **(किताब उठाता हुआ)** किताब की लुटिया ही डुबा दी !

उर्मिला : जेवर ? **(नेकलेस निकालती हुई)** यह लो अपना नेकलेस ! **(पलंग पर फेंकती है)** और ....

दिलीप : ठहरो उर्मिला ! **(मुस्कराता हुआ)** साड़ी बाद में भिजवा देना !

प्रवीण : मैं कहता हूं——

(चन्दू का प्रवेश)

चन्दू : हुजूर .... वे लोग बाजा लाने नहीं देते !

प्रवीण : कौन लोग ?

चन्दू : चारों मेहमान ! वापस आ गये हैं और कहते हैं ....

(अटक जाता है ।)

प्रवीण : बात पूरी करो चन्दू !

चन्दू : कहते हैं कि बाजे वाले बाबू की अक्ल दुरुस्त किये बिना हम यह बाजा नहीं छोड़ेंगे !

प्रवीण : (मानो सिकन्दर पोरस से बात कर रहा हो) कहिए मि० दिलीप कुमार, क्या खयाल है ? न्याय की मांग मान कर आप को उन लोगों के हवाले करूं या ....

उर्मिला : या ?

दिलीप : उर्मिला के नाम पर तरस खाकर छोड़ दूं ? यही न कहने वाले थे प्रवीण बाबू ? तो साहब आपके तरस का यहां कोई भूखा नहीं है ! आप जाइए और अपने अरमान पूरे कीजिए ! बन्दा हाजिर है !

प्रवीण : (तैश में) यह बात है ! .... बाद में न झींकना उर्मिला कि तुम्हारे प्रेमी को बचाया नहीं ! लेकिन लातों के भूत बातों से नहीं मानते ! मेरे घर में और यह शेखी ....

(तेजी से जाता है, चन्दू भी पीछे-पीछे उन दोनों की तरफ देखते हुए जाता है ।)

दिलीप : आ गये न अपनी असलियत पर ! कच्चा रोगन कब तक ठहरेगा ?

उर्मिला : (चिन्तित स्वर) लेकिन... लेकिन अब क्या होगा ?

दिलीप : मामला बेढब है ! ... वे पांच और मैं अकेला ! .... हड्डी पसली का पता नहीं रहेगा !

उर्मिला : (हाय री नारी !) मुझे डर लग रहा है !

दिलीप : सामने के दरवाजे से वे लोग आ रहे हैं ! बाथरूम की तरफ खूंखार कुत्ता ....

उर्मिला : (भयातुर) वे लोग आ रहे हैं . . . ओह !

(दिलीप के पास सटकर खड़ी हो जाती है और उसकी बांह पकड़ लेती है।)

दिलीप : बस एक ही रास्ता है ! (उर्मिला की बांह पकड़ कर खिड़की की तरफ ले जाता हुआ) चलो उर्मिला !

उर्मिला : कहां ?

दिलीप : खिड़की की राह ! (खिड़की खोलकर उर्मिला को सहारा देकर खिड़की के पार उतारता हुआ) जल्दी करो !

(स्वयं खिड़की के पार उतरता है ।)

उर्मिला : (हंसते हुए) मैंने ठीक कहा था । . . . .

(दोनों अब खिड़की के उधर हैं ।)

दिलीप : कि मैं कायर हूं (हंसी) लेकिन क्या रुक्मिणी ने कृष्ण को कायर कहा ! या संयोगिता ने पृथ्वीराज को ? (फिर (हंसकर) चलो !

(दोनों की बातचीत की आवाज धीमी होती जाती है, क्योंकि वे चले जा रहे हैं और कमरा खाली है ।)

उर्मिला : आपका वायलिन ! जान से प्यारा ! !

दिलीप : वायलिन ! (प्रसिद्ध गीत के स्वर में) तुम हो मेरे संग, वीणा है मेरे संग——

उर्मिला : (उसी तान में) आगे बढ़ा कदम !

(दोनों हंसते हुए गायब हो जाते हैं और उस तरफ हंसी की प्रतिध्वनि गूंजती सी जान पड़ती है !)

(परदा गिरता है ।)

————

पापी

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

मुख्य पात्र

शान्तिलाल

छाया

रेखा

उषा

मां

पहला दृश्य

स्थान : शान्तिलाल के घर का कमरा, जो ड्राइंग-रूम का भी काम देता है।

समय : सायंकाल साढ़े सात बजे। घरों में लैम्प रौशन हो चुके हैं।

[तीन दरवाजे ड्राइंग-रूम में खुलते हैं। पहला दायीं दीवार में पीछे को है और छाया के कमरे को जाता है, जो ड्राइंग-रूम से तनिक दूर, घर के पिछवाड़े की ओर है। दूसरा उसी दीवार में इधर को है और आँगन में खुलता है, जिधर से रसोई-घर और ड्योढ़ी को जाने के रास्ते हैं। तीसरा बायीं दीवार में इधर को है और आराम करने के कमरे में खुलता है।

इस कमरे में एक मेज है, जिसके आस-पास कुर्सियां पड़ी हैं। सामने अंगीठी की कारनिस पर फूलदान रखे हैं। मेज पर दो पुस्तकें चुनी हुई हैं। दरवाजों पर काले रंग के परदे हैं, जिन पर सफेद मोर बने हैं। बिजली के तीन बल्ब ड्राइंग-रूम को रौशन कर रहे हैं।

परदा उठता है। कमरा खाली है। क्षण भर बाद छाया दायीं ओर का परदा उठा कर अन्दर झांकती है। बैठे-बैठे घिसटती हुई यहां तक चली आई है। एक पाँव अन्दर रखती है और कुछ क्षण चौखट में ही बैठी रहती है। फिर दूसरा पाँव अन्दर रखती है और किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है, पतली-दुबली, यक्ष्मा से पीड़ित। शरीर सूखकर कंकालमात्र रह गया है। अधर शुष्क हैं, गाल पिचक गये हैं, जबड़ों की हड्डियां उभरी हुई हैं। रंग काला पड़ गया है। सलवार और कमीज पहने है, परन्तु दोनों कपड़े उसके शरीर पर ढीले दिखाई देते हैं।

धीरे-धीरे इधर-उधर देखती हुई बढ़ती है। सिर में चक्कर आता है।

एक हाथ से सिर को थाम कर दूसरे से मेज़ का सहारा लेती है और कुर्सी में धंस जाती है। सिर मेज पर रख लेती है। दो-एक बार मुंह पर रूमाल रखकर खांसती है, फिर धीरे-धीरे सिर उठाती है। मद्धिम आवाज में जैसे अपने-आप बातें करती हुई बोलती है।]

छाया : जब मर जाना है—सब कुछ छोड़कर मर जाना है तो फिर यह ईर्ष्या क्यों, यह डाह क्यों? आज न सही, कल; कल न सही, परसों, जल्द ही ज़िन्दगी का यह टिमटिमाता हुआ दीया बुझ जाने को है। फिर भविष्य के उस अन्धकार में टटोलने से लाभ? कोई उसे रौशन करे। वह जगमगाती मशाल हो, या चकाचौंध पैदा करनेवाली बिजली, कोई हो—दीये का क्या? बुझे हुए दिये को क्या?

[दीर्घ निःश्वास छोड़ती है। ज़ोर की खाँसी आती है। मुंह पर रूमाल रखकर सिर मेज से लगा लेती है। कुछ देर बाद फिर धीरे-धीरे सिर उठाती है। मुख और उतर गया है। उसी तरह अपने आप से]

—नहीं, देखूंगी। अपने हाथों बनाये हुए कल्पना के गगनचुम्बी महलों को अपने सामने जलते हुए देखूंगी! उन्हें जलने से बचा तो न सकूंगी, पर चुप भी कैसे बैठी रह सकूंगी, किसी का घर धड़ाधड़ जल रहा हो और वह मजे-से चुपचाप बैठा रहे, कैसे हो सकता है? वह उसे जलने से बचा न सकता हो, वह कुछ भी न कर सकता हो। वह देख तो सकता है—अपनी हसरतों, अपने अरमानों, अपनी चिर-संचित आकांक्षाओं को बर्बाद होते देख तो सकता है। वह न देखेगा तो पागल हो जायगा, न देखेगा तो मर जायगा। **(खांसी आती है, रूमाल मुंह पर रखती है।)**

—उसी कमरे में होंगे वे, मैंने उन्हें कुछ देर पहले

इधर आते देखा था। इस कमरे में तो नहीं, जरूर उसी में होंगे।

(उठती है। खांसी आती है। एक पग चलती है, फिर दूसरी कुर्सी पर बैठ जाती है। फिर उठती है और पागलों की तरह बायें कमरे के दरवाजे तक जाती है। परदा उठाकर देखती है। दरवाजा जरा-सा खुला है। झांकती है। तत्काल पर्दा छोड़ देती है। मुड़ती है। चेहरा और भी काला पड़ जाता है, आंखों के गढ़े और भी गहरे हो जाते हैं।)

(तनिक आवेग से) रेखा, रेखा, बहन होकर मां-जाई होकर मेरी चिता पर यह रंगरलियां! तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम्हें लज्जा नहीं आती रेखा! और तुम—तुम्हें मैं क्या कहूं?

[तेजी से जाने लगती है। सिर में चक्कर आता है। कुर्सी का सहारा लेते-लेते गिर पड़ती है और अचेत हो जाती है। कमरे का दरवाजा खुलता है। परदे को उठाकर तेजी से शान्तिलाल प्रवेश करता है, केवल एक कमीज और पतलून पहने है। कमीज का गिरेबान खुला है।

रसोईघर की ओर से मां भागी आती है। हाथ में फुंकनी और मुंह पर कालिख के धब्बे हैं। घबराई हुई है, सांस फूल रही है। फुंकनी फेंकती है, छाया पर झुकती है। शान्तिलाल घुटनों के बल बैठा है।]

शान्तिलाल: (आवाज धीमी और कंठ में फंसी हुई) छाया!

मां: इतनी दूर चलकर यह कैसे आ गयी—अपने कमरे से यहां तक! इसे तो चारपाई तक से हिलने की मनाही है।

शान्तिलाल: (छाया को अपनी बलिष्ठ बांहों में उठाता हुआ) मुझे क्या मालूम?

[छाया को उठाकर उसके कमरे की ओर ले जाता है।

मां उसके पीछे-पीछे जाती है। कमरे से धीरे-धीरे रेखा निकलती है—मंझोला कद, कोमल अंग, उन्नाबी रंग की साड़ी में चलती-फिरती ज्वाला दिखाई देती है। मुख पर चिन्ता है। पग-पग चलती कमरे के मध्य आ जाती है।)

रेखा : (धीरे-धीरे, अपने-आप) क्या हो रहा है, क्या होने को है? मैं तो बीमार बहन को देखने आयी थी, मैं तो उसका दुःख बंटाने आयी थी। क्या मैं उसका दुःख बंटा रही हूं? (व्यंग्य से मुस्कराती है।) वाह! क्या खूब दुःख बंटा रही हूं उसका मैं? उसे मृत्यु के समीप लिये जा रही हूं! उसके दुःख की चिनगारी को ज्वाला बना रही हूं! (कुर्सी में धंस जाती है।)

—(अत्यधिक पीड़ा से अपने आप) रेखा, रेखा, तुझे क्या हो गया है? तुझे क्या हो गया है? तुझे अपने आप पर जरा भी काबू न रहा? तू बहे जा रही है, डूबे जा रही है और अपने साथ उसे भी बहाये जा रही है, उसे भी डुबाये जा रही है, जिसे तू बचाना चाहती है, जिसे तू बचाने को आई है। (उठती है। कमरे में बेचैनी से घूमती है।)

—(फिर रुकती है) नहीं, तुझे अपने-आप पर काबू रखना होगा। तुझे अपने आपको हत्यारिन होने से बचाना होगा। यह दिल, इस पागल दिल के उद्‌गारों को रोक रखना होगा। ये आंखें, इन प्यासी आंखों की तृष्णा को दबा देना होगा! यह कान, इन रसिया कानों की लालसा को बांध रखना होगा! तू देखकर भी न देखेगी, सुनकर भी न सुनेगी, अनुभूति रखने पर भी कुछ अनुभव न करेगी।

[किवाड़ खुलने की आवाज आती है। रेखा चौंकती है। उठकर तेजी से कमरे में चली जाती है। छाया के कमरे की ओर से शान्तिलाल

दाखिल होता है। भृकुटि तनी हुई है, फर्श पर गिरी हुई एक पुस्तक को पांव की ठोकर मारता हुआ अंगीठी के नीचे गद्देदार कुर्सी पर बैठ जाता है। कुहनियां मेज पर टेक लेता है और हथेलियों पर ठोड़ी रख कर सोचता है। उसी दरवाजे से मां प्रवेश करती है।)

मां : तुम इधर आ गये, उसके पास जाकर बैठो।

शान्तिलाल : (चुप)

मां : जाओ, उसके पास जाकर बैठो, वह बीमार है, मरने को है।

शान्तिलाल : (चुप)

मां : मैं क्या चीख रही हूं, क्या बक रही हूं ?

शान्तिलाल : (उसी तरह बैठे-बैठे) मैं यह सब कुछ नहीं सह सकता !

मां : क्या नहीं सह सकते ?

शान्तिलाल : यह रोज-रोज का दुःख, क्लेश, ताने तिश्ने। मैं थक गया हूं, ऊब गया हूं ....

मां : और हम में क्या नित नयी शक्ति आती है ? हम नहीं थक गये, हम नहीं ऊब गये ? लेकिन यह कर्तव्य है, धर्म है। कल मैं बीमार पड़ जाऊं, तो क्या मैं न चाहूंगी, कोई मेरे पास बैठे; मेरा हाल-चाल पूछे, मेरी देख-भाल करे ? जाओ वह रो रही है, उसे तसल्ली दो, धीरज बंधाओ।

शान्तिलाल : मैं कहां तक धीरज बंधाऊं ?

मां : जैसे तुम सदा धीरज बंधाते हो !

शान्तिलाल : (बेजारी से) नहीं, मैं कुछ नहीं करता; मैंने कुछ नहीं किया बस, फिर वही ताने तिश्ने, कोसने उलाहने। (तनिक आवेग से) क्या मैंने महीनों उसकी सेवा नहीं की ? महीनों अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके उसकी देख-भाल नहीं करता रहा ? क्या दिन के एक-एक बजे तक बिना खाये-पिये डाक्टरों के पीछे मारा-मारा नहीं फिरा ? क्या सैनेटोरियम में मैंने उसे नहीं पहुंचाया ? क्या पहाड़ पर

मैं उसे नहीं ले गया ? क्या दिन का चैन और रातों की नींद मैंने हराम नहीं की ? **(धीमे स्वर में)** नहीं, मैंने कुछ नहीं किया, मैंने कुछ नहीं किया !

मां : नहीं, तुमने बहुत कुछ किया है, और उसी बहुत कुछ का तो शायद तुम बदला ले रहे हो—और उसकी आंखों के सामने ही ...... हाय ! शान्तिलाल ! बेटा ! तुमने उसकी दशा कैसी बना दी है ? दो बरस में उसकी सेहत इतनी खराब नहीं हुई जितनी इन दो दिनों में हो गयी है। वह होश में है, लेकिन अच्छा था, वह बेहोश होती। मैं कहती हूं, तुम यह व्यवहार छोड़ दो, तुम्हें वह अच्छी नहीं लगती तो उसे जहर दे दो, उसका गला घोंट दो।

शान्तिलाल : **(जोश से खड़ा हो जाता है)** मैंने उसकी यह दशा कर दी है, व्यवहार मेरा बुरा है ? बच्चा पैदा होने के बाद दिन-रात मैंने उसे काम में लगाये रखा, उसके सिर में दर्द बना रहने लगा, उसे मैंने नखरा बताया ? उसे ज्वर हो आया, मैंने तानों की खूराकें दीं ? टाइफॉइड के बाद मैंने उसे आराम न लेने दिया ? आपको अपने दोष दूसरों के सिर मढ़ने खूब आते हैं। यदि मेरे व्यवहार के कारण ही उसे बीमार होना होता, तो अब तक वह मर चुकी होती। तीन बरस जो मेरे पास रही, तब तो उसका सिर तक न दुखा, यहां आकर ही उसे बीमारी क्यों चिमट गयी ? उसकी बीमारी का उत्तरदायी मैं हूं, या आप ?

मां : **(शान्ति के साथ)** बेटा, बीमारी न तुम्हारे बस की है, न मेरे। यह न लगाये लगती है, न हटाये हटती है। जिसके भाग्य में जितना दुःख लिखा है, उसे भोगना पड़ेगा— चाहे वह धनी हो, या निर्धन, सम्पन्न हो, या विपन्न !

शान्तिलाल : नहीं, मैं यह नहीं मानता। ये सब रोग हमारे लगाये ही

लगते हैं। नये व्याहे जवान यक्ष्मा से उतने क्यों नहीं मरते, जितनी नयी ब्याही लड़कियां ? यह सासों की क्षुद्रता और निर्दयता है, जिसके कारण आज इतनी बहुएं इस रोग के हाथों मौत के मुंह में जा रही हैं।

मां : सासें निर्दयी होती हैं ?

शान्तिलाल : नहीं तो क्या दया का अवतार होती हैं ! मैंने तुम्हें आज तक मां के रूप में देखा था मां ! यदि मैं जानता——इस दयामयी मां के कलेवर में निर्दयी सास भी छिपी हुई है तो मैं किसी अस्पताल में प्रसव का प्रबन्ध कर लेता। उसे बच्चा हुआ, उसकी देख-भाल न की गयी ! उसे टाइफॉइड हुआ, ठीक उपचार न किया गया। मैं आराम-आराम चीखता रहा, उसे आराम न दिया गया। अब तुम्हीं बताओ जिस लड़की ने मां-बाप के घर बहुत काम न किया हो, पति के घर बहुत काम न किया हो, वह बच्चे वाली हो, उसे पढ़ने का शौक हो, वह काम भी करे, दस-दस कमरों में बुहारी दे, ढेर के ढेर बर्तन मांजे, समय-कुसमय खाना खाये, फिर वह बीमार न हो, तो क्या हो ?

मां : टाइफॉइड तो तुम्हारे भाई को भी हुआ था, मरते-मरते बचा था।

शान्तिलाल : वह तुम्हारा लड़का था, बहू न थी। मैं कब कहता हूं, तुम में प्रेम या दया की कमी है। मैं जानता हूं, मैं बीमार हो जाऊं, तो तुम आकाश-पाताल एक कर दोगी, पर यदि बहू की तबीयत खराब हो, तो तुम कहोगी——नखरे करती है, बहाने बनाती है ! मैंने लाख कहा कि मैं काम नहीं चाहता, उसे आराम करने दो; पर तुम लोग तो उसे मारने पर तुले हुए थे। तुम सबने मिल-मिलाकर उसे बीमार कर दिया, अब अभियोग मुझ पर धरा जाता है। जहर

का घूंट तुम लोगों ने उसे पिलाया, खाली प्याला मेरे हाथों में ठूंसा जा रहा है। (कुर्सी में धंस जाता है।)

मां: (जोश में खड़ी हो जाती है) शर्म करो, शर्म करो! हमें दोषी ठहराते तुम्हें लाज नहीं आती! तुम्हें हमारी सेवा सेवा नहीं मालूम होती। हम सारा-सारा दिन काम करते रहें, सारी-सारी रात जागते रहें, वह किसी गिनती में नहीं! मैं कहती हूं, जो हालत तुमने पैदा कर रखी है, उसमें तुम्हारी मां तो क्या, स्वयं धन्वन्तरि भी चलकर आ जायं, तो उसे नीरोग न कर सकें। जरा अपने गिरेबान में मुंह डालकर देखो। सोचो, बीमार स्त्री देख-भाल ही चाहती है—सूखी देख-भाल ही चाहती है। वह क्या चाहती है, यह तुम अच्छी तरह जानते हो, पर जानते हुए भी तुम अनजान बनते हो। सोच-समझ रखते हुए भी समझने की कोशिश नहीं करते!

शान्तिलाल: क्या समझने की कोशिश नहीं करता?

मां: कि बीमार स्त्री क्या चाहती है।

शान्तिलाल: क्या चाहती है?

मां: वह चाहती है कि उसका पति उसके पास रहे। उसके सिरहाने बैठे, उसकी देख-भाल करे और सबसे बढ़कर, उसे तसल्ली दे। उसे बताये कि वह उसके साथ है, चाहे दुनियां उसका साथ छोड़ दे, रिश्ते-नातेदार उसकी बीमारी से ऊब जायं, वह न ऊबेगा, उसके व्यवहार में अन्तर न आयेगा। वह उससे उतना ही प्रेम करेगा, जितना पहले करता था।

शान्तिलाल: क्या मैंने ऐसा नहीं किया, क्या मैंने लगातार कई रातें उसके सिरहाने बैठकर नहीं गुजार दीं?

मां: हां, गुजार दीं, और शायद इसीलिए, इसी जन्म में उससे

अपने एहसान का बदला भी ले रहे हो और जीते-जी उसके सीने पर सौत . . . . .

[कमरे से रेखा निकलती है और तेजी से आंगन की ओर जाती है। मुख उसका क्रोध से लाल हो गया है।]

शान्तिलाल : रेखा !

[उठ खड़ा होता है। रेखा नहीं सुनती, नहीं देखती, बढ़ जाती है।]

शान्तिलाल : (उसके पीछे जाते हुए) रेखा ! रेखा !

[रेखा एक बार देखती है और चली जाती है। शान्तिलाल उसके पीछे जाता है।]

मां : उसे देखते जाओ, उसे तसल्ली देते जाओ, उसकी हालत ठीक नहीं, वह न बचेगी।

[शान्तिलाल नहीं सुनता, चला जाता है। मां निराश होकर बैठ जाती है। दूसरे दरवाजे से उषा प्रवेश करती है।]

उषा : (स्वर कांपता-सा है) मां . . . . भौजी !

मां : छाया ?

उषा : हां !

मां : क्या है ?

उषा : तुम चलो।

मां : कहो कहो, घबराई हुई क्यों हो ?

उषा : मां, वह अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से छत को, दीवारों को, मुझको इस तरह देखती है कि मुझे डर लगता है। उसकी आंखों में आंसू हैं और मैं उसे धीरज नहीं बंधा सकती।

मां : (दीर्घ निःश्वास लेकर) अभागी बहू, मरते समय भी तेरी किस्मत में चैन नहीं। (फिर दीर्घ निःश्वास लेती है, उषा से) चलो।

[दोनों छाया के कमरे को चली जाती हैं। आंगन से शान्तिलाल रेखा का हाथ थामे प्रवेश करता है। आकर कुर्सी पर बैठ जाता है। रेखा खड़ी है, दूसरी ओर मुंह किये हुए है।]

शान्तिलाल : रेखा !

रेखा : (चुप)

शान्तिलाल : (रुद्ध कंठ से) रेखा !

रेखा : (फिर चुप)

शान्तिलाल : (रेखा के हाथ को झटककर) रेखा ! रेखा !

रेखा : (उसी भांति खड़े-खड़े) कहो ?

शान्तिलाल : क्या कहूं ? कुछ सूझता भी हो ! दिमाग में हलचल मची हुई है, कुछ सोच नहीं पाता, कुछ समझ नहीं पाता। मैं क्या कहूं ?

रेखा : तो कुछ न कहो, मुझे जाने दो।

शान्तिलाल : (रुद्ध कंठ से) रेखा, कुछ न कहूं ?

रेखा : कुछ कहो या मुझे जाने दो। मैं तो पूछती हूं, कहो, कुछ कहो, बताओ, क्या कहना चाहते हो ?

शान्तिलाल : तुम भाग क्यों गयीं ?

रेखा : मैं जाना चाहती थी।

शान्तिलाल : नहीं, यह बात नहीं, तुम्हें मां की बातें बुरी लगीं पर मैं कहता हूं उसकी · · · · ·

रेखा : नहीं, मुझे किसी की बात बुरी नहीं लगी। मैं स्वयं जाना चाहती हूं।

शान्तिलाल : बहन को इस दशा में छोड़कर भी।

रेखा : मैं रहूंगी तो बहन न बचेगी।

शान्तिलाल : तुम चली जाओगी, तो मैं न बचूंगा !

रेखा : (व्यंग्य से मुस्कराती है।) तुम, (लम्बी सांस भरती

हैं, शब्द उसकी सांस के साथ बाहर निकलते हैं) ओह ! तुम बच सकते हो, तुम्हें कुछ न होगा। तुम जो एक प्रेयसी के कंकाल पर बैठकर दूसरी से प्रेम कर सकते हो ! कंकाल हां ····· कंकाल ही तो, बहन में अब क्या रखा है ? हड्डियों का एक ढांचा समझ लो। तुमने उससे कितना प्यार न जताया होगा ? कितने वादे न किये होंगे ? कितनी बार कहा होगा, 'मैं तुम्हारे बिना न जी सकूंगा छाया, तुम्हारे बिना न बच सकूंगा।' अब वही तुम, अपनी उसी छाया के रहते, एक दूसरी से मुहब्बत जता रहे हो, उससे कह रहे हो––मैं न बचूंगा ! तुम पुरुष, तुम्हारा कोई भरोसा नहीं, तुम पत्थर-दिल हो।

शान्तिलाल : रेखा, मैं पत्थर-दिल नहीं। दिल तो कब का पानी हो चुका है।

रेखा : पत्थर-दिल नहीं ! **(व्यंग्य से हंसती है)** ज़रा सोचो; जरा खयाल करो, बहन का खयाल करो, उसके बीते दिनों का खयाल करो, अतीत की स्मृतियों का खयाल करो, उसकी बीमारी का खयाल करो, उसकी पल-भर को मिट जाने वाली हसरतों और अरमानों का खयाल करो और फिर अपनी संग-दिली का खयाल करो !

शान्तिलाल : तुमने मुझे सब कुछ भुला दिया है, तुमने मुझे पागल बना दिया है।

रेखा : इसीलिए मैं जा रही हूं, तुम पागल न बनो, होश में आओ, कपने कर्त्तव्य को पहचानो !

शान्तिलाल : रहो, जाओ मत। जिस तरह कहोगी, करूंगा। यों पागल बनाकर न चली जाओ, मैं कुछ न कर सकूंगा। तुम मेरे पास रहो, मुझे आदेश दो, मैं वैसा ही करता जाऊंगा।

रेखा : तुम नहीं समझते—नहीं समझते मेरे रहने से बहन को

कितना दुःख होगा। तुमने उसके वे शब्द नहीं सुने, उसके हृदय में उठते हुए तूफान का अन्दाजा नहीं किया, उसे अचेत होते नहीं देखा? हाय! मैं उस पर---अपनी बहन पर---बीमार, मरने वाली बहन पर---इतने अनर्थ ढाने वाली हो गयी! मुझे मौत क्यों न आ गयी, मैं मर क्यों न गयी?---छोड़ दो, छोड़ दो, मुझे जाने दो!

शान्तिलाल: रेखा, आग लगाकर तुम जाना चाहती हो?

रेखा: मैं कुछ नहीं जानती, मैं कुछ नहीं जानती। तुमने मुझे अपना कर्त्तव्य भुला दिया है। तुमने, तुम्हारी मीठी, मादक बातों ने, तुम्हारे जादू-भरे शब्दों ने, मुझे अपने-आप में नहीं रखा। पर अब नहीं। मैं स्वयं जली जा रही हूं, यहां से जाकर भी मैं सुखी न रह सकूंगी, जलती रहूंगी, लेकिन मैं जाऊंगी। यह अनर्थ है, अन्याय है! **(हाथ छुड़ाकर भाग जाती है।)**

शान्तिलाल: **(उठकर उसके पीछे जाता है)** रेखा!

रेखा: **(आंगन से)** मेरे पीछे मत आओ, बहन के पास जाओ!

शान्तिलाल: रेखा! रेखा!

[उसके पीछे जाता है। पहले दरवाजे से मां प्रवेश करती है।]

मां: शान्तिलाल, शान्तिलाल, वह तुम्हें बुलाती है, वह तुमसे कुछ कहना चाहती है।

[आंगन के दरवाजे से निकल जाती है। पहले दरवाजे से उषा प्रवेश करती है।]

उषा: मां! मां!

[मां के पीछे आंगन को जाती है, कुछ क्षण स्टेज खाली रहता है, फिर आहिस्ता-आहिस्ता घिसटती हुई छाया प्रवेश करती है, किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है।]

छाया : (उन्मादिनी-सी) तुम न आओ, तुम न आओ। मैं स्वयं आती हूं। दोष मेरा है। तुम गुस्से हो, किन्तु मरने वाली से कैसा गुस्सा? (खांसती है।) तुम्हें क्रोध होगा, मैंने तुम पर सन्देह किया, अपनी मां-जाई को अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैं मौत की अंधेरी खोह के मुंह पर खड़ी हूं। जाने कब अथाह अन्धकार में खो जाऊंगी। मैं होश में नहीं हूं। (जोर से खांसती है) मुझे क्षमा कर दो। तुमने मेरी बहुत सेवा की, सात जन्म इसका बदला न चुका सकूंगी। ईश्वर करे, अगले जन्म में मैं फिर तुम्हारी दासी बनूं और तुम्हारी सेवा करते-करते प्राण दूं।

[सिर में चक्कर आता है, बैठते-बैठते गिर पड़ती है। मां आंगन से दौड़कर आती है।]

मां : छाया ······ छाया !

उषा : (भागती आती है) भौजी ······ भौजी !

[छाया धीरे-धीरे आंखें खोलती है, सांस चढ़ी हुई है। मां उसका सिर अपनी गोद में रखती है।]

छाया : मां, मेरे सब दोष क्षमा कर देना। मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है।

मां : आराम कर बेटी, तू थक गयी है।

छाया : बस, अब आराम ही करना है, अनन्त विश्राम की गोद में सोना है, अपने पांव इधर लाओ मां, उनकी धूल अपने माथे पर लगाऊं।

[मां रोती है, छाया उसके पांवों की धूल अपने मस्तक पर लगाती है।]

—मैंने उन पर सन्देह किया मां, व्यर्थ ही उन्हें दोष दिया। उनसे कहना मुझे क्षमा कर दें, मैं मर रही हूं।

मां : उस पापी का नाम न लो, राम-राम कहो।

छाया : वे आयें तो उनके चरणों की धूल मेरे माथे पर लगा देना।

[आंखें बन्द हो जाती हैं ।]

मां : छाया . . . . बेटी !

[रोने लगती है ।]

उषा : भौजी . . . . भौजी !

[रोती है ।]

मां : (सिसकते हुए) बस, स्नेह समाप्त हो गया। दिया बुझ गया। उषा, रोशनी बुझा दो। इसे आंगन में ले चलें।

[उषा बिजली का एक बटन दबाती है, एक बल्ब बुझ जाता है, दो स्त्रियां प्रवेश करती हैं।]

एक : मर गयी !

मां : (केवल रोती है।)

दूसरी : बेचारी ने बड़ा दुःख पाया।

[उषा दूसरा बटन दबाती है। तीनों मिल कर छाया का शव ले जाती हैं। उषा तीसरी बत्ती बुझाती है। कमरे में अंधेरा हो जाता है, केवल आंगन और उधर के झरोखों से प्रकाश की क्षीण रेखाएं ड्राइंग-रूम को थोड़ा-सा रोशन रखती हैं। शान्तिलाल प्रवेश करता है।]

शान्तिलाल : चली गयी ! रेखा भी चली गयी, छाया भी चली गयी ! चारों ओर अंधेरा है--सिर्फ मैं इस अंधेरे में भटकने के लिए रह गया हूं--छाया देवी थी, रेखा भी देवी है, मैं नीच हूं, मैं ही पापी हूं !

[कुर्सी में धंस जाता है--परदा अचानक गिर पड़ता है।]

———

सीमा रेखा

विष्णु प्रभाकर

पात्र

लक्ष्मीचंद्र :	बड़ा भाई, एक व्यापारी, उम्र ५६ वर्ष
शरतचन्द :	दूसरा भाई, एक उप-मंत्री, उम्र ५२ वर्ष
विजयचंद्र :	तीसरा भाई, कप्तान पुलिस, उम्र ४८ वर्ष
सुभाषचंद्र :	चौथा भाई, जन-नेता, उम्र ४४ वर्ष
तारा :	लक्ष्मीचंद्र की पत्नी, उम्र ५२ वर्ष
अन्नपूर्णा :	शरतचंद्र की पत्नी, उम्र ४५ वर्ष
उमा :	विजयचंद्र की पत्नी, उम्र ४२ वर्ष
सविता :	सुभाषचन्द्र की पत्नी, उम्र ३५ वर्ष

[शरतचंद्र का ड्राइंग रूम, आधुनिक पर सादगी की छाप, दीवार पर गांधीजी का तैलचित्र है। नेताओं के दो चार चित्र तिपाइयों पर भी हैं। पुस्तकें काफी हैं, बीचोंबीच एक सोफा सैट है। उत्तर की ओर सामने दो द्वार हैं जो बाहर बरामदे में खुलते हैं। उसके पार सड़क है। पूर्व और पश्चिम के द्वार घर के अन्दर जाते हैं। सोफे व मेजों के आसपास कुर्सियां हैं। परदा उठने पर मंच खाली है। दो क्षण बाद शरतचंद्र तेजी से आते हैं, बेहद परेशान हैं, कई क्षण बेचैनी से घूमते हैं, फिर टेलीफोन उठा लेते हैं, नम्बर मिलाते हैं]

शरतचंद्र : हैलो, मैं शरत बोल रहा हूं। विजय का कुछ पता लगा ? ···· क्या ? क्या अभी तक नहीं लौटे ? झगड़ा बढ़ गया है ? गोली ··· गोली चलानी पड़ी, भीड़ फैक्टरी के पास बेकाबू हो गई थी ··· फैक्टरी को लूटा ? नहीं, कहीं और लूटमार हुई ? नहीं, कोई घायल हुआ ? अभी कुछ पता नहीं। अभी पता करके बताओ, विजय आये तो मुझे टेलीफ़ोन करने को कहो ·· तुरन्त ··· समझे ··· मैं घर पर ही हूं।

(दूसरा नम्बर मिलाना चाहते हैं कि उनकी पत्नी अन्नपूर्णा घबराई हुई बाहर से आती है)

अन्नपूर्णा : आपने कुछ सुना ?

शरतचंद्र : हां, सुना है गोली चल गई।

अन्नपूर्णा : अपने राज में भी गोली चलती है ?

शरतचंद्र : अपना राज, समझता कौन है ? और जब तक लोग अपना राज नहीं समझेंगे तब तक गोली चलेगी ही। लेकिन तुम कहां गई थीं ?

अन्नपूर्णा : जीजी के पास। रास्ते में सुना रामगंज में गोली चल गई।

बाजार बंद हो रहे हैं। भय छाया हुआ है। लोग सरकार को गालियां दे रहे हैं।

शरतचंद्र : (चोंगा रख कर आगे आ जाते हैं) सरकार को गाली ही दी जाती है। गोली चली तो गाली देते हैं, फैक्टरी लुट जाती तब भी गाली ही देते !

अन्नपूर्णा : (एकदम) फैक्टरी। कौनसी फैक्टरी लुट रही थी ? फैक्टरी से कुछ झगड़ा नहीं था। कल आपके पीछे कुछ विद्यार्थी सिनेमा वालों से झगड़ पड़े थे और आप जानते हैं कि विद्यार्थी···

शरतचंद्र : (एकदम) कि विद्यार्थी कानून की चिंता नहीं करते, बच्चे हैं, अल्हड़ हैं। (तेज होकर) यह भी कोई बात है ! लोग पागल हो जाते हैं, कानून अपने हाथ में ले लेते हैं। गोली चली है तो जरूर कोई कारण रहा होगा। कुछ लोगों न फैक्टरी पर धावा बोला होगा, पुलिस पर पत्थर फैंके होंगे।

(जन नेता सुभाषचंद्र की पत्नी सविता का प्रवेश)

सविता : फैंके होंगे तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के जवाब में गोली चला दी जाय। गोली उन्हें आत्मरक्षा के लिए नहीं दी जाती, जनता की रक्षा के लिए दी जाती है।

अन्नपूर्णा : सविता, तुम कहां से आ रही हो ?

शरतचंद्र : तुम क्या कह रही हो ?

(बड़े भाई लक्ष्मीचंद्र का प्रवेश)

सविता : मैं ठीक कह रही हूं।

लक्ष्मीचंद्र : तुम बिल्कुल गलत कह रही हो। पुलिस गोली न चलाती तो फैक्टरी लुट जाती, बाजार लुट जाता, चारों ओर लूटमार मच जाती, शासन की जड़ें हिल जातीं।

सविता : शासन की जड़ें हिलतीं या न हिलतीं, दादाजी ! पर आपकी जड़ें जरूर हिल जातीं। आपका व्यापार ठप्प हो जाता। आपका नुकसान होता····

लक्ष्मीचंद्र : हां, मेरा नुकसान होता। मैं सरकार की प्रजा हूं। प्रजा की रक्षा करना सरकार का फर्ज है।

सविता : यानी सरकार की पुलिस आपकी रक्षा करने के लिए है ?

लक्ष्मीचंद्र : हां, मेरी रक्षा करने के लिए है।

सविता : केवल आपकी ?

अन्नपूर्णा : न, न, सविता, इनका मतलब केवल अपने से नहीं है। भीड़ इनका ही नुकसान करके न रह जाती। वह सारे शहर को बर्बाद कर देती।

सविता : भीड़ में इतनी शक्ति है, जीजी ?

शरतचंद्र : भीड़ में कितनी शक्ति है, सवाल यह नहीं है।

सविता : तो क्या है ?

शरतचंद्र : सवाल यह है कि क्या भीड़ को कानून अपने हाथ में लेने का अधिकार है ? मैं समझता हूं उसे यह अधिकार नहीं है।

सविता : और यदि वह लेती है तो ?

शरतचंद्र : तो वह विद्रोह है और विद्रोह को दबाने का सरकार को पूरा अधिकार है।

सविता : लेकिन विद्रोह क्यों किया गया है ? यह देखना क्या सरकार का अधिकार नहीं है ? **(टेलीफोन की घंटी बजती है, शरतचंद्र एकदम उठाते हैं। सब उनके पास आते हैं।)**

शरतचंद्र : हैलो·· हां, मैं ही हूं··· क्या स्थिति अभी काबू में नहीं है ? लूटमार तो नहीं हुई है न ? अच्छा·· घायल कितने हुए·· पांच वहीं मर गए। बीस घायल अस्पताल में हैं···। मैं अभी आता हूं। **(टेलीफोन का चोंगा रख कर तेजी से जाने को मुड़ता है।)**

अन्नपूर्णा : **(एकदम)** नहीं, नहीं, आप ऐसे नहीं जा सकते।

लक्ष्मीचंद्र : हां, पहले फोन करके पुलिस बुला लो।

सविता : पुलिस क्या करेगी ? चलिए, मैं चलती हूं।

शरतचंद्र : आप चिंता न करें। पुलिस की गाड़ी बाहर खड़ी है।

सविता : **(व्यंग्य से)** जरूर होगी। जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं। **(आवेश में)** जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियां खाईं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे, वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं।

(शरतचंद्र तिलमिला कर कुछ कहना चाहते हैं कि तभी विजयचंद्र का पूरी वर्दी में तेजी से प्रवेश।)

लक्ष्मीचंद्र : **(एकदम)** विजय !

सविता : कप्तान साहब आप यहां ?

अन्नपूर्णा : विजय, अब क्या हाल है ?

शरतचंद्र : विजय, तुमने यह क्या कर डाला ? तुमने गोली क्यों चलाई ? तुम्हें सोचना चाहिये था कि····

लक्ष्मीचंद्र : विजय ने जो कुछ किया है, सोच-समझ कर ही किया है और ठीक किया है।

अन्नपूर्णा : हां, बिना सोचे समझे कोई काम कैसे किया जा सकता है। सोचा तो होगा ही पर····

शरतचंद्र : नहीं, नहीं, यह बहुत बुरा हुआ। जानते नहीं अब जनता का राज्य है और जनता के राज्य में, जनतंत्र में जनता की प्रतिष्ठा होती है।

विजयचंद्र : लेकिन गुंडों की नहीं।

सविता : वे गुंडे हैं ?

लक्ष्मीचंद्र : हां, वे गुंडे हैं। दंगा करने वाले गुंडे होते हैं, शोहदे होते हैं।

शरतचंद्र : नहीं, भैया ! वे सब गुंडे नहीं होते। हां, गुंडों के बहकाए में जरूर आ जाते हैं।

सविता : यह भी खूब रही ! जनता कुछ गुंडों के बहकाए में आ जाए

और आप लोगों की, जो कल तक उनके सब कुछ थे, कोई बात न सुने !

शरतचंद्र : (तिलमिला कर) सविता !

सविता : सुनिए भाई साहब, बात यह है कि आप अपना संतुलन खो बैठे हैं। आप निरंकुश होते जा रहे हैं। आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं। आप भूल गए हैं कि जनतन्त्र में शासक कोई नहीं होता, सब सेवक होते हैं।

विजयचंद्र : (थके से) सेवक होते हैं तो क्या मर जाने के लिए हैं ?

सविता : हां, मर जाने के लिए ही हैं। कोई मर कर देखे तो ....

लक्ष्मीचंद्र : बहू, तुम बहुत आगे बढ़ रही हो। स्वतन्त्रता का युग है तो इसका यह मतलब नहीं कि बड़े छोटे का विचार न किया जाए।

अन्नपूर्णा : हां, सविता, तुम्हें इतना तेज नहीं होना चाहिए।

सविता : मैं क्षमा चाहती हूं। आप सब मुझसे बड़े हैं। आपका अपमान मैं कभी नहीं कर सकती। ऐसा सोच भी नहीं सकती। पर इस नाते-रिश्ते से ऊपर भी तो हम कुछ हैं। हम स्वतन्त्र भारत की प्रजा हैं, हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं, हम इन्सान हैं।

विजयचंद्र : इन्सान हैं तो सभी हैं, स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं तो सभी हैं। कानून सब पर लागू होता है।

लक्ष्मीचंद्र : बेशक सब पर होता है। सब समान हैं।

सविता : बेशक सब समान हैं, दादाजी, पर जिन पर व्यवस्था और न्याय की जिम्मेदारी है उनका दायित्व अधिक है।

शरतचंद्र : जरूर है, इसीलिए मुझे जाना है। लेकिन जाने से पहले मैं जानना चाहूंगा, विजय, कि आखिर बात कैसे बढ़ गई ?

विजयचंद्र : मैं तो वहां था नहीं। कल के झगड़े के बारे में आप जानते ही हैं। आज फिर विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किए। सिनेमाघर पर हमला किया। वहां से वे फैक्टरी के पास आए।

शरतचंद्र : क्या उन्होंने फैक्टरी पर हमला किया ?

विजयचंद्र :- कर सकते थे। शायद वे यही चाहते थे।

शरतचंद्र : कौन ? विद्यार्थी।

विजयचंद्र : यह तो नहीं कह सकता। भीड़ में केवल विद्यार्थी ही नहीं थे। शरारती लोग ऐसे अवसरों की ताक में रहते हैं। पुलिस ने भीड़ को रोका तो उन्होंने पत्थर फेंके---

अन्नपूर्णा : पुलिस पर पत्थर फेंके ?

लक्ष्मीचंद्र : तब तो जरूर उनका इरादा फैक्टरी लूटने का था।

शरतचंद्र : क्या पुलिस वालों को चोटें आईं ?

विजयचंद्र : जी हां, दस-बारह सिपाही घायल हो गए। एक इंस्पैक्टर का सिर फूट गया।

सविता : बस ?

लक्ष्मीचंद्र : तुम चाहती थीं कि वे सब मर जाते।

(सुभाषचंद्र का प्रवेश)

सुभाषचंद्र : हां, वे सब मर जाते तो ठीक होता।

शरतचंद्र : सुभाष !

अन्नपूर्णा : सुभाष, यह तुम क्या कह रहे हो ?

लक्ष्मीचंद्र : तुम तो कम्युनिस्ट हो गए हो और अपनी बहू को भी तुमने ऐसा ही बना दिया है। **(बाहर शोर उठता है)**

सुभाषचंद्र : दादाजी, मैं न कभी कम्युनिस्ट था, न हूं और न कभी बनूंगा पर मैं स्वतन्त्र भारत में गोली चलाना जुर्म मानता हूं।

लक्ष्मीचंद्र : चाहे जनता कुछ भी करे, उसे सब अधिकार हैं।

सुभाषचंद्र : बेशक हैं। उसी ने इन लोगों के **(शरत की ओर इशारा करता है)** हाथ में शासन की बागडोर सौंपी है।

शरतचंद्र : किसलिए सौंपी है ? रक्षा के लिए या बरबादी के लिए ?

(बाहर शोर तेज होता है। सविता चौंकती है और बाहर चली जाती है।)

सुभाषचन्द्र : रक्षा के लिए।

शरतचंद्र : लेकिन जब जनता स्वयं नाश करने पर तुल जाए तो क्या हमें उसे ऐसा करने देना चाहिए ?

सुभाषचंद्र : नहीं ।

विजयचंद्र : यही तो हमने किया है ।

लक्ष्मीचंद्र : ठीक किया है ।

शरतचंद्र : ऐसा करने का उन्हें अधिकार है । वे हैं ही इसलिए । तुम भी इसे मानते हो तो फिर कहना क्या चाहते हो ?

सुभाषचंद्र : यही कि हमें राज्य की रक्षा करते-करते प्राण दे देने चाहिएं, प्राण लेने नहीं चाहिएं । हमें देने का ही अधिकार है, लेने का नहीं ।

शरतचंद्र : सुभाष, यह कोरा आदर्शवाद है ।

सुभाषचंद्र : कर्तव्य का पालन करते हुए मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूंगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए ।

शरतचंद्र : सुभाष, तुम बोलना ही जानते हो ।

सुभाषचंद्र : आपसे ही सीखा है, भाई साहब !

विजयचंद्र : लेकिन जिम्मेदारी संभालना नहीं सीखा ।

सुभाषचंद्र : वह भी सीखा है । मैं जनता से प्रतिज्ञा करके आया हूं कि आज शाम तक गोली चलाने वाले कप्तान पुलिस को मौअत्तिल कराके छोड़ूंगा ।

अन्नपूर्णा : क्या ? क्या कहा तुमने ?

लक्ष्मीचंद्र : अपने ही घर में तुम अपनों के दुश्मन बन कर आए हो ।

सुभाषचंद्र : अपना पराया मैं कुछ नहीं जानता । मैं जनता का प्रतिनिधि हूं । मैं माननीय उपमंत्री श्री शरतचंद्र को बताने आया हूं कि उनके एक अधिकारी ने निहत्थी जनता पर गोली चलाकर जो वर्बर काम किया है उसकी जांच करवानी होगी और जब तक वह जांच पूरी नहीं होती तब तक गोली चलाने से सम्बन्धित सब

व्यक्तियों को मौअत्तिल करना होगा ।

शरतचंद्र : यह किसकी मांग है ?

सुभाषचंद्र : उस जनता की जिसने आपको गद्दी सौंपी है, जिससे आज आप दूर भागते हैं, डरते हैं ।

शरतचंद्र : मैं डरता हूं ?

सुभाषचंद्र : हां, आप डरते हैं । यदि न डरते तो घर में छिपकर बैठ रहने के स्थान पर जनता के पास जाते । तब यह नौबत न आती, गोली न चलती, निर्दोष निहत्थे नागरिक न मरते ।

शरतचंद्र : लेकिन तुम भी तो जनता के नेता हो, तुमने कौनसा तीर मार लिया ?

सुभाषचंद्र : मैंने क्या किया है, यह मेरे मुंह से सुनकर क्या करेंगे, पर इतना कहे देता हूं कि जनता संयत न रहती तो कप्तान विजयचंद्र यहां बैठे न दिखाई देते । इनसे पूछिए तो कि क्या इन्हें बंदूकें इसीलिए दी गई हैं कि जरा सा पत्थर आ लगे तो जनता को गोली से भून दें ?

लक्ष्मीचंद्र : गोली न चलती तो···

सुभाषचंद्र : (**एकदम**) दादाजी, आप न बोलें । आप व्यापारी हैं । आपका सिद्धांत आपका स्वार्थ है ।

लक्ष्मीचंद्र : (**आवेश में**) मैं तो स्वार्थी हूं, पर तुम अपनी तो कहो । तुम्हारी नेतागिरी भी तो मुझ स्वार्थी के पैसे से ही चलती है ।

सुभाषचंद्र : ठीक है, उतना पैसा सार्थक होता है पर आप यह क्यों भूल गए कि उस दिन जब कुछ व्यापारी पकड़े गए थे तब आपने विजय भैया को कितना कोसा था ?

लक्ष्मीचंद्र : आज तुम कोस रहे हो, क्योंकि तुम मंत्री नहीं हो, विरोधी दल के हो ।

सुभाषचंद्र : हां, मैं विरोधी दल का हूं लेकिन दादाजी, मैं आपसे बातें नहीं कर रहा हूं ।

लक्ष्मीचंद : (क्रोध में) तो मैं ही कब तुमसे बातें कर रहा हूं ! वाह ! (तेजी से अन्दर जाते हैं)

अन्नपूर्णा : दादाजी, दादाजी ! (**पीछे-पीछे जाती है, विजयचंद्र भी जाते हैं।**)

सुभाषचंद्र : मैं माननीय उपमंत्री महोदय से पूछता हूं कि····

शरतचंद्र : (एकदम) और मैं तुम से पूछता हूं कि क्या जनता के राज्य में भी सड़कों पर प्रदर्शन होने चाहिएं ? भीड़ को कानून हाथ में लेना चाहिए ?

सुभाषचंद्र : जब तक सरकार और उसके अधिकारी ठीक आचरण नहीं करेंगे तब तक जनता प्रदर्शन करती ही रहेगी, कानून हाथ में लेती ही रहेगी। भाई साहब, इस नौकरशाही ने, शासन की इस भूख ने आपको जनता से दूर कर दिया है।

शरतचंद्र : सुभाष, तुम बार-बार एक बात की रट लगाए जा रहे हो।

सुभाषचंद्र : मैं ठीक ही कह रहा हूं। जनता सरकार के ढांचे को उतना महत्त्व नहीं देती जितना अधिकारियों की ईमानदारी और हमदर्दी को। आप चलिए मेरे साथ। (**सहसा शोर बढ़ता है**)

शरतचंद्र : हां, मैं चलूंगा; मुझे तो कभी का चले जाना था, पर···यह शोर कैसा है ?

सुभाषचंद्र : अवश्य कोई बात है। देखूं··· (**जाने को मुड़ता है कि लक्ष्मीचंद्र की पत्नी तारा विक्षिप्त सी वहां आती है।**)

तारा : (पागल सी) : विजय कहां है ? (**चारों तरफ देखती है**)

सुभाषचंद्र : भाभी जी, क्या है ?

तारा : मैं पूछती हूं विजय कहां है ? उसका मनचाहा हो गया। उसकी गोली अरविंद के सीने से पार हो गई····

शरतचंद्र : (एकदम) भाभी !

सुभाषचंद्र : भाभी, तुम क्या कह रही हो ? (**सविता का प्रवेश**)

सविता : भाभी ठीक कह रही हैं। अरविंद जनता की सरकार की गोली का शिकार हो गया।

(लक्ष्मीचंद्र, विजयचंद्र और अन्नपूर्णा का प्रवेश)

लक्ष्मीचंद्र : कौन गोली का शिकार हो गया ?

सविता : अरविंद।

लक्ष्मीचंद्र : **(कांप कर)** क्या. . .क्या अरविंद मर गया ?

तारा : हां, गोली उसके सीने से पार हो गई। वह मर गया।

(सब हक्के-बक्के रह जाते हैं। पागल से देखते हैं। लक्ष्मीचंद्र सोफे पर गिर पड़ते हैं। विजयचंद्र दोनों हाथों से मुंह ढक लेते हैं। अन्नपूर्णा पागल-सी तारा को संभालती है।)

अन्नपूर्णा : अरे, मेरे अरविंद को किसने मार डाला ? नाश जाए इस पुलिस का ! बिना गोली कोई बात ही नहीं करता। अरे विजय, तुमने यह क्या किया ?

विजयचंद्र : **(पागल सा)** ओह, यह क्या हुआ ? अरविंद वहाँ क्यों गया था ?

(टेलीफोन की घंटी बजती है। सविता उठाती है।)

सविता : हैलो ! जी हां हैं। **(विजय से)** कप्तान साहब, आपका फोन है।

विजयचंद्र : **(फोन लेकर)** जी हां, क्या· ·भीड़ बेकाबू हो गई है। मैं अभी आया।

(चोंगा पटक कर तेजी से किसी की ओर देखे बिना भागता है।)

सुभाषचंद्र : मैं भी जाता हूं। वहीं कुछ हो न जाए। **(जाता है)**

शरतचंद्र : मैं भी चलता हूं।

(मुड़ता है पर तारा के बोलने पर ठिठक जाता है)

तारा : सब जाओ, पर अरविंद क्या आएगा ?; उसने किसी का क्या बिगाड़ा था ! वह चिल्लाया : मैं दंगा नहीं करता, मैं बाजार

जाता हूं पर··· (अन्नपूर्णा उसे अन्दर ले जाती है।)

लक्ष्मीचंद्र : पर मदांध पुलिस वालों ने एक न सुनी, गोली मार दी। पुलिस को अपनी जान इतनी प्यारी है कि एक दस वर्ष के बच्चे से भी उन्हें डर लगा।

सविता : (जाते-जाते) किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा।

लक्ष्मीचंद्र : सब अंधे हैं, ताकत के अंधे। जो सामने आता है उसे कुचल देना चाहते हैं। चाहे वह धूल हो, चाहे पत्थर।

शरतचंद्र : (जाता हुआ, व्यथा से) ओह, यह क्या हो रहा है? यह क्या हुआ?

लक्ष्मीचंद्र : वही हुआ जो विजय चाहता था, जो तुम चाहते थे।

शरतचंद्र : (एकदम) दादाजी!

लक्ष्मीचंद्र : तुमने मेरा घर बरबाद कर दिया। मेरे बच्चे को मार डाला। तुम सब हत्यारे हो!

शरतचंद्र : दादाजी! ओह, मैं क्या कहूं!

लक्ष्मीचंद्र : जब पैसे की जरूरत होती है तो मेरे पास आते हो। टैक्स मांगते हो, दान मांगते हो, व्यापार में पैसा लगाने को कहते हो और···और मुझी पर गोली चलाते हो।

शरतचंद्र : दादाजी, गोली उन्होंने जानबूझ कर नहीं चलाई। अरविंद तो बच्चा था। उससे किसी का क्या बैर था!

लक्ष्मीचंद्र : बैर क्यों नहीं था? वह जनता में था और तुम हो जनता के शत्रु। मैं अभी जाकर विजय से पूछता हूं।

(जाने को उठता है। सविता आती है।)

सविता : अभी रुकिए, दादाजी! भाभीजी को दौरा पड़ गया है। (टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाकर) हैलो, जी हां, हैं। (शरत से) आपका फोन है।

शरतचंद्र : (फोन लेकर) हैलो, जी हां। क्या··· मंत्रिमंडल की बैठक

हो रही है। मुझे भी बुलाया है। मैं अभी आया।

(फोन रख कर जाने को मुड़ता है, तभी सुभाष का तेजी से प्रवेश)

सुभाषचंद्र : भाई साहब, आपको अभी चलना है।

शरतचंद्र : मैं चल ही रहा हूं। मंत्रिमंडल की बैठक हो रही है।

सुभाषचंद्र : वहां नहीं, आपको मेरे साथ चलना है। आपको जनता के पास चलना है। जनता में बड़ी उत्तेजना है। विद्यार्थी पीछे रह गए हैं, दूसरे समाजद्रोही तत्त्व आ गए हैं, विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया है।

शरतचंद्र : (पागल सा) विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया।

सुभाषचंद्र : जी, हां।

शरतचंद्र : वह कहां है ?

सुभाषचंद्र : भीड़ के सामने।

शरतचंद्र : वह भीड़ के सामने है ? (एकदम दृढ़ होकर) चलो सुभाष, मैं देखता हूं जनता क्या चाहती है। (दोनों जाते हैं)।

सविता : मैं भी चलती हूं।

लक्ष्मीचंद्र : मैं भी चलता हूं।

सविता : नहीं, नहीं आप ठहरें। आप भाभीजी को संभालें।

(जाती है, तभी अन्नपूर्णा आती है।)

अन्नपूर्णा : क्या हुआ दादाजी ? सब कहां गए ?

लक्ष्मीचंद्र : सब गए। सुभाष आया था। कहता था, विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। अरे अब तो इन्कार करना ही था। वे तो मेरे बच्चे को मारना चाहते थे।

अन्नपूर्णा : नहीं, नहीं दादाजी ! यह बात नहीं थी।

लक्ष्मीचंद्र : कैसे नहीं थी ! मैं उन सब को जानता हूं। वे मेरे पैसे से आगे बढ़े और मुझी को बरबाद कर दिया। मैं पूछता हूं, उन्होंने

पहले ही गोली चलाने से इन्कार क्यों न किया ? क्योंकि··· क्योंकि···

अन्नपूर्णा : नहीं, दादाजी, नहीं···

लक्ष्मीचंद्र : **(आवेश में)** ये मेरे छोटे भाई हैं ! एक ने मुझे स्वार्थी, देशद्रोही कहा। दूसरे ने मेरे बेटे को मार डाला, मेरे मासूम बच्चे को मार डाला। **(रोकर गिर पड़ता है।)**

अन्नपूर्णा : **(संभालती हुई)** दादाजी ! दादाजी ! ओह, यह एक ही घर में क्या होने लगा। भाई भाई में यह मनमुटाव ! **(एकदम)** नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। दादाजी, आप गलत समझ रहे हैं।

लक्ष्मीचंद्र : **(आंखें खोलकर)** मैं गलत समझ रहा हूं। अरविंद, मेरे बच्चे, तू चला गया, मैं तुझ से दो बातें भी न कर सका। तू तो भीड़ में भी नहीं था। अरविंद···

(तारा का प्रवेश)

तारा : क्या अरविंद आया है ? कहां है ?

(अन्नपूर्णा तारा को पकड़ती है।)

अन्नपूर्णा : भाभी जी, आप क्यों उठ आईं ? हम अभी अस्पताल चलते हैं। आप अपने को संभालिए।

(अन्दर ले जाती है। लक्ष्मीचंद्र भी जाते हैं। तभी अस्त-व्यस्त परेशान सविता का प्रवेश।)

सविता : अद्‌भुत दृश्य था। अपार भीड़ थी। उसके आगे खड़े थे कप्तान भैया। दूर से देख सकी। किसी ने पास जाने ही नहीं दिया। एक रेला आया और मैं पीछे आ पड़ी।

(अन्नपूर्णा आती है।)

अन्नपूर्णा : तुम आ गईं। वे लोग कहां हैं ? सुभाष कहां है ?

सविता : कुछ पता नहीं, मुझे किसी का कुछ पता नहीं। मैं आगे नहीं बढ़ सकी और वे दोनों आगे बढ़े चले गए। एक बार भीड़ के बीच में सबको देखा, फिर उस ज्वारभाटे में सब कुछ छिप

गया। **(टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाकर)** हैलो ! जी हां, जो, वह तो गए। जी हां, भीड़ में जाते मैंने देखा था। **(फोन रखती है)** मंत्रिमंडल की बैठक में शरत भाई साहब का इन्तजार हो रहा है। वह अभी तक पहुंचे ही नहीं। मैं कहती हूं, ये लोग मंत्रिमंडल की बैठकें क्यों करा रहे हैं ? जो लोग विदेशियों की गोलियों से नहीं डरे, वे अपने ही बच्चों और भाइयों से क्यों डरते हैं ? जनता में क्यों नहीं आते ?

अन्नपूर्णा : क्योंकि शासन भीड़ में आकर नहीं चलाया जाता। आखिर जनतंत्र भी तो कानून का राज्य है।

सविता : है, पर ··**(एकदम)** नहीं, अब बहस करने का समय नहीं है। सोचने का और काम करने का समय है। बेचारा अरविंद ! उसकी मौत क्यों हुई ? प्रजातंत्र में एक निर्दोष, निरीह बालक की हत्या क्यों हुई ? **(टेलीफोन की घंटी फिर बजती है, उठा कर)** हैलो ! क्या है ? हां, हां, कप्तान साहब तो कभी के चले गए। ···क्या उनका पता नहीं मिल रहा···नहीं नहीं, वह, भीड़ के सामने थे। मैंने देखा था, जी हां, मैंने देखा था···उधर का हाल ठीक नहीं है। उनके हुक्म के बिना कुछ नहीं कर सकते ···आए तो कह दूंगी··क्या··कोई आया है··हां, हां, पूछिए··हैलो···· हैलो···हैलो··· **(फोन रखकर)** कनेक्शन काट दिया अवश्य कोई बात है। मैं जाती हूं **(जाने को मुड़ती है।)**

अन्नपूर्णा : सविता, तुम न जाओ। ठहरो तो ! **(सविता नहीं रुकती)** गई !

लक्ष्मीचंद्र : **(आकर)** कौन गई ? क्या बात है ?

अन्नपूर्णा : जरूर कोई बात है ? सविता टेलीफोन कर रही थी, पता नहीं क्या बात हुई, भागती चली गई।

लक्ष्मीचंद्र : तो मैं भी जाता हूं। अरविंद को भी लाना है। **(गला रुंध**

जाता है।)

अन्नपूर्णा : दादा जी, पहले किसी को आ जाने दीजिये।

लक्ष्मीचंद्र : घबराओ नहीं। मैं बच्चा नहीं हूं।

(जाते हैं। दूसरे द्वार से उमा पागलों की तरह आती है।)

उमा : जीजी, सब कहां हैं ?

अन्नपूर्णा : तुझे पता नहीं। यहां से तो कभी के गए। क्या तुझे सविता नहीं मिली ?

उमा : मुझे कोई नहीं मिला। मैं तो अरविंद की खबर सुनकर भागी आ रही हूं। मैं भाभी जी को कैसे मुंह दिखाऊंगी ! मैं मर क्यों न गई।

अन्नपूर्णा : (शून्यवत्) न जाने क्या होने वाला है ! एक ही घर के लोग एक दूसरे को खा रहे हैं। (बाहर भीड़ का शोर) यह क्या ? लोग इधर आ रहे हैं !

उमा : (द्वारा पर जाकर देखती है। चीख पड़ती है।)जीजी !

अन्नपूर्णा : क्या हुआ ? क्या हुआ, उमा ?

(उठ कर तेजी से आगे बढ़ती है। तभी घायल शरत वहां आता है। मुंह पर घाव हैं। एक हाथ बंधा है।)

अन्नपूर्णा : (कांप कर) यह क्या हुआ ?

शरतचंद्र : वही जो होना चाहिए था। विजय भीड़ में कुचला गया, पर उसने गोली नहीं चलाई।

उमा : कुचल गए ! कौन ?

शरतचंद्र : विजय कुचल गया। चला गया।

उमा : (चीख कर) भाई साहब, वह कहां हैं ?

अन्नपूर्णा : (शरत से) यह तुम क्या कह रहे हो ?

शरतचंद्र : भीड़ संतुलन खो बैठी थी, विवेक खो बैठी थी। वह चिल्लाती रही : अरविंद कहां है ? अरविंद को लौटाओ ! और विजय भीड़ के सामने अड़ा रहा। चिल्लाता रहा : मुझमे

अरविंद का बदला लो। मैंने अरविंद को मारा। तुम मुझे मार डालो।

उमा : और भीड़ ने उन्हें मार डाला ?

शरतचंद्र : पता नहीं किसने मार डाला ? उनके गिरते ही भीड़ पर जैसे अंकुश लग गया। पर ··· जब वहां शान्ति हुई तो विजय और सुभाष दोनों कुचले हुए पड़े थे।

उमा : सुभाष भी !

अन्नपूर्णा : सुभाष भी कुचला गया ? हाय !

शरतचंद्र : हां, सुभाष भी कुचला गया। लेकिन खबरदार जो उनके लिए रोए। रोने से उन्हें दुःख होगा। उन्होंने प्राण दे दिए पर अधिकारियों और जनता का संतुलन ठीक कर दिया। वे शहीद हो गए, पर दूसरों को बचा गए। नगर में अब बिल्कुल शांति है। सब सगर्व उन बलिदानों की चर्चा कर रहे हैं, सब शोक-संतप्त हैं। **(बाहर देखकर)** लो, वे आ गए। हां, रोना मत··· रोना मत ···

(तभी लक्ष्मीचंद्र और सविता के साथ पुलिस तथा दूसरे अधिकारियों का प्रवेश। एक भयंकर सन्नाटा छाया रहता है। सविता का मुख पत्थर की तरह कठोर है। लक्ष्मीचंद्र तूफान की तरह कांप रहे हैं। शरत दृढ़ता से प्रबंध में लगे हैं। विजय, सुभाष और अरविंद की लाशें बराबर के कमरे में रख दी गई हैं। सहसा उमा तेजी से आगे बढ़ती है। बराबर वाले कमरे में झांक कर एक जोर की चीख मारती है। तारा अन्दर से आती है।)

तारा : कैसा शोर है, अन्नपूर्णा ? अरविंद आ गया ? कहां है ?

शरतचंद्र : भाभी, वह देखो, बराबर वाले कमरे में तीन लाशें रखी हैं। वह अरविंद और सुभाष हैं, जनता की क्षति और उधर वह विजय है, सरकार की क्ष ति।

अन्नपूर्णा : (रोकर) यह तुम कैसी बावलों की सी बातें करते हो यह सब मेरे घर की क्षति है।

सविता : (उसी तरह पत्थरवत्) नहीं, जीजी, यह घर की नहीं, सारे देश की क्षति है। देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं !

शरतचंद्र : तुमने ठीक कहा, सविता ! यह हमारे देश की क्षति है। जनतंत्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं होती।

(परदा गिरता है।)

बादल आ गये

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल

पात्र

डॉक्टर सरन

मानिक

वीणा

शोभना

वीरसिंह

(हिल स्टेशन का एक डाकबंगला। इस एकांकी का परदा डाकबंगले के एक गोल कमरे में उठता है। बायीं ओर दो दरवाजे हैं : एक आगे—बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए, और एक उसके पीछे—कमरों में जाने के लिए। दायीं ओर केवल एक दरवाजा है—उधर के कमरों में जाने के लिए और बाहर निकलने के लिए।

कमरे में बायीं ओर एक मेज-कुरसी। दायीं ओर एक बेंच, एक स्टूल, टी-टेबल और एक कुरसी। पीछे की ओर टांगने का एक स्टैण्ड जिसके बीचोंबीच मुँह देखने का चौड़ा-सा शीशा लगा हुआ है।

मई के प्रारम्भिक दिन हैं। समय : दिन के चार बचने वाले हैं।

परदा उठने पर डॉक्टर सरन दिखाई देते हैं, जिनकी अवस्था ४० वर्ष से अधिक नहीं है। गरम सूट पहने हुए हैं। आंखों पर चश्मा, सुन्दर सहज व्यक्तित्व। मेज पर 'माइक्रोस्कोप' रख उसके बीच स्लाइड पर कुछ परीक्षा कर रहे हैं। दायीं ओर से डाकबंगले के चौकीदार का प्रवेश, अवस्था ५० वर्ष।)

वीरसिंह : [डाक्टर को देखते ही अंगोछे से अपना मुँह-नाक बन्द कर लेता है] शाहब जी···साह···।

डॉ० सरन : [काम में दत्तचित्त।]

वीरसिंह : शाहब जी···।

डॉ० सरन : क्या है? बोलो···अरे इस तरह तूने नाक-मुंह क्यों बन्द कर रखा है?

वीरसिंह : शाहब जी··। वह मशीन···वह मशीन शाहब जी!

डॉ० सरन : [सहसा हंसकर] ओह, यह मशीन। मशीन हटा दूँ, यहां से, तब तुम खुलकर बोलोगे! अच्छा···यह लो बाबा··।

[कुरसी के पीछे से तौलिया उठाकर मशीन ढ़ंक देता है ।]

वीरसिंह : [खुलकर सांस लेता हुआ] ओह शाहब जी ! चलिए चाय तैयार है ।

डॉ० सरन : [उठकर[आज मैं चाय यहीं पीऊंगा !

वीरसिंह : (साश्चर्य) नहीं पीयेंगे ? ···जैसी आपकी मर्जी शाहब ! (प्रस्थान)

डॉ० सरन : (बायीं ओर देखता हुआ आह्लादित) ओह बादल ! (पुकारता हुआ) वीरसिंह !

[आया शरकार—भीतर से आवाज]

डॉ० सरन : नये बादल ! वीरसिंह, बादलों की सेना आ गयी ! अचानक ··· इतनी ही देर में !

[वीरसिंह ट्रे में चाय लिये हुए आता है और टी-टेबल पर रख देता है ।]

डॉ० सरन : देखो, कैसे बादल आये हैं, छिपे हुए अचानक——जैसे पैराशूट से इस धवलधार की चोटी पर कोई सेना उतार दी गयी हो ।

वीरसिंह : (देखता हुआ) हां शाहब, मानशून के बादल तो आ गये । इश शाल बादल जल्दी आ गये !

डॉ० सरन : सच ?

वीरसिंह : हां जी शाहब, आपकी वजह शे । (रुककर) शाहब चाय पीजिए ।

डॉ० सरन : (अपनी मेज की ओर बढ़ते हुए) । आज तुम्हीं चाय बना कर दो मुझे ।

वीरसिंह : (घबराकर) नहीं शाहब नहीं । उश मेज के पाश मत जाइए । उश मशीन में पीले बुखार के कीड़े हैं शाहब !

डॉ० सरन : (चाय के पास आते हुए) तो तुम इतने डर गये हो इस पीले बुखार से ।

वीरसिंह : डरूं न तो और क्या करूं शाहब ! इधर के इलाके में यह

पीला बुखार बड़ा जालिम होता है शरकार। इशी तरह यह बुखार सन् ऊन्नीश शौ शैंतिश में एक बार फैला था, तब मैं ····।

डॉ० सरन: (बीच ही में) जवान था ?

वीरसिंह: हां शाहब ! तब उश बार इस पीले बुखार शे इस इलाके के आधे लोग मर गये थे।

डॉ० सरन: अब ऐसा नहीं होगा। अभी शुरुआत है इसकी। इस बार मैं इस पीले बुखार को जड़ से उखाड़ फेंकूंगा।

वीरसिंह: भगवान् करे ऐसा ही हो शाहब ! नीचे घाटी के उस गांव में इशी बुखार से आज शुबह एक आदमी मर गया है। तभी तो मुझे इस मशीन से डर लगता है। बुखार का खून है न उसके अन्दर।

डॉ० सरन: (हँसते हुए) इस मशीन से तुम डरते हो, जो तुम्हारी रक्षा करने वाली है। इस मशीन से मैं बुखार के मरीज के खून की जांच कर रहा हूं।

वीरसिंह: चाय ठण्डी हो जायेगी शाहब !

डॉ० सरन: (बायीं ओर भीतर जाते हुए) रुको मैं हाथ धो आऊं। (प्रस्थान।)

वीरसिंह: (अपने-आप) शाहब, मैं आपकी इस मशीन से नहीं डरता। मैं उस पीले बुखार शे जरूर डरता हूं (सहसा मेज के सामने घुटने टेक कर हाथ जोड़े हुए) हे मशीन माता, तुम हमारी रक्षा करो। हे माताजी, मेरे लड़के की शादी होने वाली है। (घुटने टेके हुए फर्श पर माथा झुकाता है। सहसा एक पांव पर खड़ा होकर) हे मशीन माता ! हमको माफ करो, हम नहीं जानता था कि तुम ····।

[फफक कर रोने ही जा रहा था कि डॉक्टर का प्रवेश।]

डॉ० सरन : अरे ··· यह क्या ?

वीरसिंह : कुछ नहीं। कुछ नहीं शाहब ! कुछ नहीं; शच कुछ नहीं।

(डॉ० सरन टी-टेबल के सामने बैठ कर चाय पीते हैं। उसी समय बाहर से आवाज आती है।)

आवाज : वीरसिंह। ··· चौकीदार ····।

वीरसिंह : **(बायीं ओर बाहर भागता हुआ)** आया शरकार।

डॉ० सरन : लगता है चार बजे वाली 'वस' आ गयी। **(घड़ी देखकर)** अरे ! मेरी घड़ी इतनी फास्ट क्यों चल रही है ··· यह तो पांच बजा रही है। **(खड़ा होकर)** व्हाट इज् इक्जैक्ट टाइम ? **(बायीं ओर देखते ही)** श्रोह ! इतने वादल जमा हो गये।

(उसी क्षण सामने से मानिक और दीपा का प्रवेश। मानिक गरम सूट पहने है, मुंह में सिगार है। दायां पैर निःशक्त होने के कारण एक बैसाखी के सहारे आया है। साथ में दीपा---सुन्दर गम्भीर युवती, कन्धे से थर्मस् लटकाये हुए। पीछे वीरसिंह सिर पर अटैची और होलडाल लिये हुए। प्रवेश करते ही डॉ० सरन और दीपा की दृष्टि एकाकार हो जाती है।)

डॉ० सरन : **(उद्दीप्त हो)** दीपा ! ···यू ····

(मानिक की दृष्टि डॉ० सरन और दीपा की एक नजर को पकड़ लेती है। फिर डॉक्टर, मानिक और दीपा को, देखता ही रह जाता है। वीरसिंह सामान के साथ दायीं ओर बढ़ता है।)

वीरसिंह : आइए शाहब। रूम नम्बर थ्री में आइए।

[वीरसिंह के पीछे गऊ की तरह सिर झुकाये दीपा चली जाती है।]

मानिक : **(एक ठण्डी मुसकान के साथ)** आपकी तारीफ ?

डॉ० सरन : मेरी ? ··· आ' एम डॉक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज

कानपुर ।

मानिक : तो पहाड़ पहली बार आये हैं । आई·सी····!

डॉ० सरन : तशरीफ रखिए ।

मानिक : **(कुरसी पर बैठते हुए)** शुक्रिया ।

डॉ० सरन : **(बेंच पर बैठ कर टी टेबल पास खींच कर)** इधर की एरिया में एक अजीब तरह का बुखार--यलो फीवर की कुछ शिकायत है । गवर्नमेण्ट ने यहां इसकी फैक्ट फाइंडिंग और डाइग्नोसिस के लिए भेजा है ।

(चाय ढालते हुए) और आपकी तारीफ ?

मानिक : मेरा नाम मानिक है--एडवोकेट लखनऊ । ऐण्ड···दैट दीपा इज माई वाइफ ।

(वीरसिंह का प्रसन्नवदन प्रवेश ।)

वीरसिंह : हुजूर चलिए, कमरा ठीक हो गया । मेम साहब बुला रही हैं ।

(रुककर) ओ हो शाहब ! मैं तो आपको देखने के लिए तरश गया था । शोचता था, अब आपशे मेरी भेंट न होगी ।

मानिक : और भेंट भी हुई तो आज इस हालत में--जब मेरा यह दायां पैर बेकार हो गया है ।

वीरसिंह : **(दुःख से)** राम··राम··राम ! यह तो बहुत अफशोश की बात है हुजूर ।

डॉ० सरन : क्या हुआ यह आपके पैर में ?

मानिक : क्या बताऊं डाक्टर साहब !

'खुदा किसी को ये ख्वाबे-बद न दिखलाये,
कफस के सामने जलता है आशियां अपना' । और क्या बताऊं ।

[चुप एकटक डॉक्टर को देखता है, डॉ० सरन चाय खत्म

कर रहे हैं।)

मानिक : वीरसिंह, ! चलो, मैं अभी आ रहा हूं !

डॉ० सरन : यह ट्रे उठा ले जाओ।

[**वीरसिंह ट्रे उठाकर चला जाता है**]

मानिक : आज पांच साल पहले की बात है, मैं बम्बई में था। वहीं मुझे दायीं काछ में एक बहुत बड़ा औंधा फोड़ा हुआ, फिर वह अपने-आप बैठ गया। फिर मुझे शादी करनी पड़ी···।

डॉ० सरन : (बीच ही में) पहली शादी या···।

मानिक : जी हां, शादी तो पहली ही थी।

डॉ० सरन : वेरी लेट।

मानिक : जी समझिए। हां, तो हुआ यह कि मेरा वह दबा हुआ फ़ोड़ा शादी के एक ही साल बाद बड़े भयानक ढंग से फिर उभरा। ऑपरेशन हुआ ! ब्लड में शुगर की वजह से घाव पुजता ही न था। छह महीने अस्पताल में पड़ा रहा, फिर जब वहां से उठाकर घर लाया गया और धाव पुजा तो इस पैर की ताकत गायब ! डाक्टर-वैद्य-हकीम लोग जाने क्या-क्या बकवास करते हैं, मगर इस बाबत अपनी समझ में कुछ नहीं आता।

[**उठकर सीधे दायीं ओर प्रस्थान, दरवाजे से सहसा घूम कर**].

जरा माफ कीजिये··· मेरी वाइफ से आपका कुछ पहले का भी परिचय है क्या ?···बस यूं ही मैंने बाई द वे पूछ लिया—'डॉण्ट माइण्ड इट प्लीज़।'

डॉ० सरन : जी हां, ऐसा लगता है कि हम लोग परिचित हैं।

मानिक : आप कहां के रहने वाले हैं ? मेरा मतलब आपका घर ?···

डॉ० सरन : लखनऊ।

मानिक : किस जगह ?

डॉ० सरन : लालबाग।

मानिक : हूं। ···आई सी····।

[**तेजी से भीतर प्रस्थान। डॉक्टर मेज पर से अपना सामान उठाने लगता है, वीरसिंह का प्रवेश।**]

वीरसिंह : शाहब, आप अपना काम यहां बैठ कर कीजिए न। अब यहां आपको कोई डिस्टर्ब नहीं करेगा।

डॉ० सरन : सच ?

वीरसिंह : हां, बिलकुल शच शाहब !

डॉ० सरन : झूठ ! (**मशीन लेकर जाते हुए**) मैं तो डिस्टर्ब हो गया ! अब यहां कोई और आये या न आये।

वीरसिंह : हुजूर आपके कमरे में यह मेज उठा लाऊं ?

डॉ० सरन : नहीं, ठीक है यहां। पर देखो, इसे जरा झाड़-पोंछ दो ! इसका कवर बदलो ! इस कमरे को जरा झाड़-पोंछ डालो। यह बेंच उठा दो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डॉ० सरन : यहां एक और अच्छी कुरसी रखो।

वीरसिंह : बहुत अच्छा शाहब !

डॉ० सरन : इस टी टेबल को जरा पीछे करो। एक फ्लावर पॉट में ताजे फूल सजा कर रखो। यह आईना जरा पोंछ डालो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डॉ० सरन : अच्छा, तुम ये सब काम झट करो। फ्लावर पॉट मैं लाता हूं अपने कमरे से।

[**डॉ० सरन का तेजी से प्रस्थान। वीरसिंह डाक्टर की आज्ञानुसार कार्य करता है। आइना वगैरह झाड़ता-पोंछता है। और एक पहाड़ी गीत गुनगुनाता है।**]

वेड़ पाको बारोंमासा
होनरेड़ का फल पाको चैता, मेरी छैला !

[उसी बीच डाक्टर हाथ म ताजे फूलों से सुसज्जित फ्लावरपॉट लिये आता है ।]

डॉ० सरन : वीरसिंह ! गाना क्यों बन्द कर दिया ?

[डॉ० फ्लावर पॉट को टेबल पर सजाता है ।]

वीरसिंह : शाहब यह गाना प्रेम का है । मेरे लड़के की शादी हो रही है न, रात को औरतें यही गाती हैं ।

डॉ० सरन : वीरसिंह, मिस्टर मानिक को तुम पहले से जानते थे ?

वीरसिंह : जी हां शाहब ! मानिक शाहब को मैं पिछले दश शाल से जानता हूं । हर साल पहाड़ की शैर करने आते थे । कभी नैनीताल, कभी मशूरी, कभी यहां, और इधर से घूमते हुए कभी सीधे कशमीर ।

डॉ० सरन : अकेले…?

वीरसिंह : नहीं शाहब, अकेले नहीं । हर शाल अपने शंग एक मेम लाते थे । … मिश मेम !

डॉ० सरन : (हंसते) मिश मेम !

वीरसिंह : अच्छा शाहबजी, आल राइट न ! (जाते-जाते सहसा घूमकर) बात अशल यह है शाहब कि मानिक साहब शे अपनी बड़ी दोश्ती है। खूब इनाम बकशीश देता है शाहब !

[उसी समय भीतर से मानिक का प्रवेश]

मानिक : किसकी बात कर रहे हो वीरसिंह ?

वीरसिंह : (सलज्ज) शाहब, आपका ही गुन गा रहा था ।

मानिक : अजी, निर्गुन के क्या गुण गाओगे ? अरे दुआ करते कि ससुरा यह पैर ठीक हो जाता (कुरसी पर बैठते हुए) लेकिन अब यह क्या ठीक होगा । जब सब कोशिशें बेकार हो गयीं !

डॉ० सरन : लेकिन कोशिशें तो और भी हो सकती हैं ।

मानिक : मैं सारी जिन्दगी बिना किसी कोशिश के सदा कामयाब

होने वाला आदमी रहा हूं। अब क्या है! (रुककर) यूं मैं 'अपनी' जिन्दगी पूरी जी चुका हूं डाक्टर साहब! इसलिए अब कोई पछतावा नहीं है। अफसोस भी नहीं है। (सहसा) ओह वीरसिंह, सुनो भाई ···।

वीरसिंह : फरमाइए शाहब !

मानिक : यहां पास में कोई गरम पानी का सोता है क्या ?

वीरसिंह : जी हां शाहब, है क्यों नहीं। मण्डी गांव के पल्ली तरफ तो है। वही मण्डी गांव शाहब, जहां की वह फलों वाली शराब···।

मानिक : ओह ! उसकी याद मत दिलाओ ! शराब··· ।

वीरसिंह : उशी की पल्ली तरफ जो पहाड़ी है न, उशी में तो है वह गरम पानी का शोता। उशको इधर गन्धक शोता कहते हैं।

मानिक : अजी वही तो मुसीबत है अपनी। दीपा मुझे उसी गरम पानी के सोते में नहलवाने के लिए यहां ले आयी है। क्या मजाक है।

डॉ० सरन : मजाक नहीं, शच है वह !

मानिक : ओ हो ! अच्छा साहब ! लेकिन कैसे ? आखिर क्यों ? वीर सिंह, तुम जाओ, बहूजी से अपने और काम पूछ लो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब ! तब तक मैं जरा 'बश स्टैण्ड' तक हो आऊँ। दूशरी मोटर आ रही होगी। एक शाहब आने **(प्रस्थान)**

मानिक : हां डॉक्टर साहब, आप कुछ कहने जा रहे थे। मैं अपने दिमागक्को क्या करूं। कमबख्त बेहद तेज दौड़ता है। एक ही साथ यह कई लोगों से बातें करना चाहता है। हजार बातें सोचने लगता है यह ! इसो की फितरत को दबाने के लिए मैं इतने सिगार पीता हूं। मगर··· । **(सिगार दागकर पीते हुए)** आप कुछ नहीं पीते डॉक्टर

साहब ?

डॉ० सरन : नहीं, थैंक्यू !

मानिक : (लम्बा कश लेकर) तभी तो इतनी छोटी उमर में आप इतने बड़े डॉक्टर हैं और मैं इतना बड़ा मरीज हूं।

डॉ० सरन : नहीं नहीं ! ऐसा क्यों सोचते हैं आप अपने लिए ?

मानिक : मैं भी यही सोचता हूं कि ऐसा मैं अपने लिए न सोचूं ! आप कुछ कहने जा रहे थे डॉक्टर साहब।

डॉ० सरन : नहीं तो !

मानिक : हां हां, आप कहने जा रहे थे कि दीपा ने मुझे यहां लाकर····।

डॉ० सरन : ओह ! हां, दीपाजी का अपना विश्वास ठीक है। उस हॉट वाटर स्प्रिंग में गन्धक मिली है। आपका उस पानी में नहाना जरूर फायदेमन्द है।

मानिक : यानी मेरे पैर में ताकत आ जायेगी ! (कुरसी से उठते हुए) मेरा यह पैर अच्छा हो जायेगा ?

[डाक्टर की ओर बढ़कर]

मानिक : मैं अच्छा हो जाऊंगा ?

डॉ० सरन : यह मैं नहीं कह सकता।

मानिक : (हतप्रभ) फिर क्या कह सकते हैं आप ? वह सब तो मैं खुद ही जानता हूं। नॉनसेन्स !

[तेजी से अपने कमरे की ओर प्रस्थान।]

डॉ० सरन : (बढ़ते हुए) मिस्टर मानिक, संभालकर···देखिए, कहीं···।

मानिक : आप से मतलब ?

डॉ० सरन : क्यों नहीं, मैं डाक्टर हूं···मेरा धर्म है कि····।

मानिक : आपका धर्म मैं खूब जानता हूं।

[तेजी से प्रस्थान]

डॉ० सरन : ओह ! इतना नर्वस टेन्शन !

[सोचते रह जाना, फिर बायीं ओर अपने कमरे की ओर जाना। उसी क्षण दायीं ओर से दीपा प्रकट होती है।]

डॉ० सरन : दीपा ··· ।

दीपा : नहीं, श्रीमती मानिक सहाय।

डॉ० सरन : ठीक है। बैठिए श्रीमती मानिक सहाय हाऊ डू यू डू ?

दीपा : प्लीज ··· ।

डॉ० सरन : तभी मैं कहूं, अभी एकाएक ये बादल कहां से आ गये !

दीपा : मैं आपसे यहां कुछ सुनने नहीं आयी हूं। महज यह पूछने आयी हूं कि आपने अभी उनसे उस हॉट वाटर स्प्रिंग के विषय में क्या कहा ?

डॉ० सरन : आपके विश्वास का समर्थन मिसेज मानिक सहाय··· नहीं दीपा ··· क्यों (हंस पड़ता है) अरे तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ? बोलो क्या बात है ?

[दीपा उत्तर में भारी पलकों से सहज एक बार डॉक्टर को देख कर रह जाती है।]

डॉ० सरन : दीपा ।

दीपा : (सहसा जागकर) कौन दीपा ! मैं कोई दीपा नहीं हूं। आपने शायद मुझे पहचाना नहीं। मैं मिसेज मानिक सहाय हूं।···और मैं उदास क्यों हूं ? मैं बिल्कुल ठीक हूं।

डॉ० सरन : (चुप देखता रह जाता है।)

दीपा : आपके पहचानने में गलती हुई।

डॉ० सरन : शायद।···लेकिन अब तो पहचान हो गयी। लालबाग में, तैंतीस वाल्मीकि मार्ग की वह दीपा और मेडिकल कालेज के तीसरे वर्ष का वह छात्र···शिवसरन···।

दीपा : प्लीज स्टाप···।

(डॉक्टर चुप होकर बाहर दूर चोटी पर उमड़ते बादलों

को देख रहा है ।]

दीपा : (आत्म-विस्मृत) यहाँ क्या करते हो ?

[डॉ० सरन चुप ।]

दीपा : अकेले ही हो ?

डॉ० सरन : (हसता हुआ) प्लीज स्टॉप इट ।

[दीपा खिल-खिलाकर हंस पड़ती है ।]

दीपा : सच, में पूछ रही हूं, बताओ न मुझे । तुम यहाँ क्या करते हो ?

डॉ० सरन : इधर नीचे के गांव में एक तरह का पीला बुखार चल पड़ा है उसी को रोकने के सिलसिले में मैं यहां आया हूं ··· ।

दीपा : मुझे बताओ—अब तक तुमने शादी क्यों नहीं की ··· ?

डॉ० सरन : प्लीज स्टॉप इट !

दीपा : (हंसती हुई) मुझे सब मालूम है जी ! एम० बी० बी० एस० करने के बाद जब तुम लखनऊ से दिल्ली चले गये—उस साल मैं बी० एस० सी० में फेल हो गयी, (रुककर) फिर समझो कि मैं तब से फेल ही होती चली गयी !

डॉ० सरन : दिल्ली एक ही महीना तो रहा, फिर मैं दो साल के लिए इंग्लैंड चला गया ।

दीपा : मुझे याद है—दिल्ली से तुमने मुझे वह आखिरी पत्र दिया था । (रुककर) फिर तो मुझे लखनऊ छोड़ना ही पड़ा । एक साल तक इलाहाबाद—मामाजी के यहां रही । और जब लखनऊ लौटी तो मेरी शादी हो गयी····।

डॉ० सरन : इस मरीज के साथ····।

दीपा : (सहसा जागकर) चुप रहो । किससे आप यह बातें कर रहे हैं ?

डॉ० सरन : (बाहर देखता हुआ) अपने से । (रुककर) मैं तो चुप ही था । पर मैं अब जरूर कहूंगा—गरम पानी के सोते में

नहलवाकर मि० मानिक का वह लुंज पैर कभी नहीं ठीक हो सकता।

दीपा : (भावावेश में) चुप रहो। आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं। आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता। (गिरे स्वर में) तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

[अपने उमड़ते हुए आंसुओं को छिपाती हुई दायीं ओर भाग जाती है। बायीं ओर से वीरसिंह की आवाज आती है।]

आवाज : मिश शाहव ! आइए, दायीं ओर वाला कमरा। कमरा नम्वर शात, मिश साहव !

[डॉक्टर का तेजी से प्रस्थान। शोभना का बायीं ओर से प्रवेश—सुन्दर युवती, आकर्षक व्यक्तित्व। जूड़े में लाल रंग का बड़ा-सा पुष्प लगाये। पीछे-पीछे सामान लिए हुए वीरसिंह।]

वीरसिंह : नम्बर शात कमरा आपके लिए रिजर्व है मिश शाहब।

शोभना : मिस्टर रामकिशोर आ गये हैं न ! (**साश्चर्य**) साहब को तुम नहीं जानते ? अरे वही फोटो खींचने वाले साहब, जो पिछले साल मेरे संग यहां आये थे !

वीरसिंह : ओ हो ! शमझा··· वही फोटो शाहव ! (**रुककर**) लेकिन अभी वह तो यहां नहीं आये मिश शाहब !

[सामान के सहित वीरसिंह का दायीं ओर प्रस्थान]

शोभना : ताज्जुब है ! रामकिशोर को तो यहां कल ही आ जाना चाहिए था। (**पुकारती है**) वीरसिंह··· वीरसिंह !

वीरसिंह : (**प्रवेश कर**) आया मिश शाहब !

शोभना : यहां अब तक और कौन-कौन आया है ?—मेरा मतलब, मेरे परिचितों में से।

वीरसिंह चार दिन पहले वह बरेली वाले कपूर शाहब आये थे;

एक दिन केवल यहां रुककर फिर काश्मीर चले गये ।

शोभना : मेरे लिए कुछ पूछ रहे थे ?

वीरसिंह : दूसरे वह चटर्जी शाहब आये थे—रेडियो वाले । यहां एक हफ्ता रहकर फिर मशूरी चले गये ।

शोभना : तुमने बताया नहीं कि मैं यहां आने वाली हूं ।

वीरसिंह : बताया था शाहब ! और वह शहारनपुर के शिनहा शाहव आये थे—कशमीर गए । वह आपके लिए पूछ रहे थे ।

शोभना : (सोचती हुई सहसा) लेकिन मुझे तो इस समय ताज्जुब है मि० रामकिशोर के लिए । उन्हें तो यहां कल ही पहुंच जाना···।

वीरसिंह : (प्रसन्न मुख) और मिश साहब, वह मानिक बाबू इस शाल यहां आये हैं; वही मानिक बाबू ····पानी की जगह शराब पीने वाले···।

शोभना : ओह, वह मानिक सहाय, एडवोकेट लखनऊ···।

वीरसिंह : हां हां, वही शाहब···नम्बर तीन में हैं ।

शोभना : पर मैंने सुना था कि उनका आधा अंग ही पैरालाइज हो गया है ।

वीरसिंह : दायां अंग तो नहीं, शिर्फ दायां पैर जरूर खराब हो गया है ।

[पृष्ठभूमि से मानिक की पुकार आती है—वीरसिंह के लिए।]

वीरसिंह : (जाता हुआ) मानिक शाहब पुकार रहे हैं ।

[वीरसिंह चला जाता है । शोभना मुड़कर शीशे के सामने खड़ी हो जाती है । अपना मेकअप ठीक करती है । जूड़े का पुष्प ढंग से लगाती है । उसी समय दायीं ओर से मानिक का प्रवेश ।]

मानिक : (देखते ही जैसे उन्मत्त) हल्लो शोभना··· बड़ी किस्मत

है मेरी।

शोभना : ओह आप ! नमस्ते····!

मानिक : अभी आयी हो न !

शोभना : जी हां, बिलकुल अभी ! यह क्या हो गया आपको ?

मानिक : पुण्य का फल ! (दोनों की हंसी) चलो, तुम से भेंट हो गयी, अब यह सब ठीक हो जायेगा। ···बैठो।

शोभना : आप तशरीफ रखिए !

[दोनों कुरसियों पर बैठते हैं]

शोभना : सुना है, चुपके से शादी कर ली आपने !

मानिक : तभी तो शादी के दूसरे साल ही यह प्रसाद मिला।

शोभना : दुलहिन तो फिर संग आयी होगी ?

मानिक : बल्कि वही मुझे अपने संग यहां ले आयी है। खैर छोड़ो इन बातों को (मुसकराते हुए)

'तुम मुखातिब हो, करीब भी हो,
तुम को देखें कि तुमसे बात करें।'

(प्रसन्नमुख) लो यह सिगरेट पियो ···।

शोभना : नहीं, अभी चाय पियूंगी।

मानिक : जरूर···जरूर ! वीरसिंह ! वीरसिंह !

वीरसिंह : आया शाहब ! (प्रवेश कर) क्या है शाहब ?

मानिक : देखो, बहू को यहां भेजो।

वीरसिंह : (जाता हुआ) अच्छा शाहब !

मानिक : मजे से अभी चाय पियेंगे, और अभी थोड़ी देर बाद 'वह भी' पियेंगे। फिर हम दोनों एक संग रहेंगे। बातें करेंगे। अरे, तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ? इस चाँद पर बादल कैसे आ गये ?

[दीपा का प्रवेश, प्रणाम में हाथ जोड़े हुए]

मानिक : दीपा—मेरी धर्मपत्नी ! और यह दिली दोस्त शोभना।

शोभना : नमस्ते जी ! बड़ी खुशी हुई आप से मिल कर। आइए बैठिए न।

मानिक : नहीं, देखो दीपा, झटपट बहुत अच्छी-सी उम्दा चाय बना कर लाओ।

[दीपा का प्रस्थान]

मानिक : और कहो, कहां हो आजकल ?

शोभना : बस, उसी स्कूल में, वहीं टीचर···। और क्या···?

मानिक : चलो मैं तुम्हें अपने संग एक बार और कश्मीर ले चलूं।

शोभना : बहुत घूम चुकी कश्मीर ! थक गयी अब तो घूमते-घूमते इधर मैं अब आखिरी बार आयी हूं।

मानिक : ऐसी भी क्या बात भई ?

शोभना : एक हैं मिस्टर रामकिशोर···सूचना विभाग में असिस्टेण्ट डाइरेक्टर। उन्हीं की वजह से यहां आयी हूं। उन्हें कल ही यहां आ जाना चाहिए था, लेकिन अब तक उनका यहां पता ही नहीं।

मानिक : अरे वही रामकिशोर, शाहजहांपुर वाला, फोटो खींचने वाला शेर।

शोभना : हां··हां·· वही ! आप उन्हें जानते हैं क्या ?

मानिक : यह मत पूछो मैं किस-किस को नहीं जानता ! हां, सिर्फ आज तक अपने को नहीं जान सका, हालां कि बहुत जानना चाहा, हुस्नो इश्क···सागरो मीना में···।

शोभना : (सहसा उद्दीप्त हो) चुप रहो। मरीज को अब इस तरह की बातें करने का कोई अधिकार नहीं।

मानिक : ओ हो ! तो महज यह एक पैर खराब हो जाने से मैं मरीज हो गया। (हंसता है) तुम तो ऐसा न कहो मेरी जान···।

शोभना : मरीज नहीं तो और क्या हैं आप ! माफ कीजिए मानिक

साहब, सब खेल-तमाशा देख चुकने के बाद आखिर में आपने ऐसी सीधी-सादी खूबसूरत लड़की को दुलहिन बनाया। आखिर क्यों? किसलिए? किस अधिकार से?

मानिक : तुम भी माफ करना शोभना, दोस्ती की बातें हैं ये—मुझे आखिर में दुलहिन की जरूरत उसी तरह पड़ी, जैसे तुम्हें अब एक दुलहे की जरूरत है। और जिसके लिए तुम पिछले कितने वर्षों से घूम रही हो।

शोभना : तो इसका जिम्मेदार कौन है?

मानिक : जिम्मेदार! **(ठहाका मारकर हंसता है)** खूब कहा—जिम्मेदार कौन है? मैं मरीज हो गया, इसका जिम्मेदार कौन है? **(सहसा)** अच्छा, छोड़ो इन बातों को **(पुकारते हुए)** अरे वीरसिंह...दीपा...।

आवाज : आया शाहब।

[वीरसिंह एक कुरसी लिये आता है। दीपा ट्रे लिये आती है। चाय के किनारे तीनों कुरसियों पर बैठ चुके हैं। वीरसिंह वापस चला जाता है।]

मानिक : **(दीपा से)** अरे, अपने डॉक्टर साहब को भी चाय पर बुला लो!

दीपा : **(चुप है)**।

शोभना : कौन डॉक्टर साहब?

मानिक : एक आये हैं डॉक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज कानपुर के। नम्बर एक कमरे में हैं। इधर शायद किसी पीले बुखार की बीमारी का चक्कर चल रहा है। उसी के सिलसिले में कुछ तीर मारने आये हैं।

[दीपा चुपचाप चाय बना रही है।]

शोभना : ओ हो!...पीला बुखार।

मानिक : मजा यह कि वह डॉक्टर साहब इनके पहले के दोस्त निकले

मजेदार संयोग है न !

मानिक : सो खून माफ है तुम्हें भाई, जो चाहो कह डालो ! (रुक कर) अरे दीपा, मजाक नहीं सच कह रहा हूं—जाओ बुला लो न अपने डॉक्टर साहब को। खिड़की पर बैठे हुए आज के नये बादल देख रहे होंगे।

[दीपा निरुत्तर सहसा उठकर भीतर जाने लगती है।]

शोभना : (उठकर रोकती हुई) बैठिए··· बैठिए··· कहां चली जा रही हैं आप ? सुनिए तो··· ।

दीपा : अब और क्या सुनूं ! आप ही बताइए।

(शोभना चुप रह जाती है। दीपा का प्रस्थान)

मानिक : जाने भी दो उसे यार ! आओ तुम इधर बैठो। दुलहिन है अपनी। लड़कियों वाली तेजी है उसमें। जिद करके मुझे यहां ले आयी है। एक गरम पानी का सोता है यहां, मुझे उसी में नहलवाने के लिए, ताकि मेरा पैर ठीक हो जाये। पर मेरी भी किस्मत देखो—यहां मुझे तुम मिल गयीं।

शोभना : (चाय पीती हुई) कोई और बात आप नहीं कर सकते ? डाक्टर को दिखाइए, आप में वह पीला बुखार तो नहीं बैठा है।

मानिक : (हंसता है) तुम्हारे असली मेहमान रामकिशोर साहब को यहां आ जाने दो। हम सब अपने-आप को एक संग डॉक्टर सरन को दिखायेंगे। और हां, रामकिशोर की नयी-नवेली पत्नी को भी दिखायेंगे। संग वह भी तो आयेंगी।

शोभना : (साश्चर्य) क्या कहा ? रामकिशोर की पत्नी ? क्या कह रहे हैं आप ?

मानिक : मैं सही कह रहा हूं। अरे आपको नहीं मालूम ? लखनऊ युनिवर्सिटी की एक मशहूर और मारूफ लड़की—कुन्तल डे से अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह !

शोभना : सच ?

मानिक : अरे ! और तुम क्या समझती थीं ?

(तेज हंसी हंसता रहता है ।)

शोभना : (तड़प कर उठती हुई) बन्द करो अपनी मनहूस हंसी ।

(आवेश में बायीं ओर प्रस्थान। मानिक सिगार के लम्बे-लम्बे कश लेते हैं । कुछ क्षणों बाद, बायीं ओर से डॉक्टर सरन का प्रवेश ।)

डॉ० सरन : ओ हो ! आप यहां अकेले बैठे हैं ?

मानिक : अकेले तो नहीं था, अब जैसा कि आप देख रहे हैं, मैं जरूर अकेले हूं । मेरी एक फ्रेण्ड आयी है—शोभना ।

डॉ० सरन : जो हां, वीरसिंह ने अभी मुझे बताया है। और आप लोगों की बातें यूं भी मेरे कमरे तक आ रही थीं ।

मानिक : यह सब संयोग की बात है न डाक्टर साहब ?

डॉ० सरन : (झट बात बदलते हुए) तो कल आप गरम पानी के सोते में स्नान करने जायेंगे !

मानिक : पर क्या होगा उससे ? डाक्टर साहब, क्या किसी तरह से यह मुमकिन नहीं है कि सिर्फ आज एक रात-भर के लिए मेरा यह पैर ठीक हो जाये। मैं पांच सौ रुपये आपको फीस दूंगा और इनाम ऊपर से ।

डॉ० सरन : असम्भव ।

मानिक : असम्भव ! अच्छा तो आज मेहरबानी करके यह भी साफ-साफ बता दीजिए कि मेरा यह पैर ठीक होगा या नहीं । आपको दीपा की कसम ।

डॉ० सरन : मिस्टर मानिक . . . ।

मानिक : (उठते हुए) मुझे विश्वास है, अब आप झूठ नहीं बोल सकते, बोलिए !

डॉ० सरन : क्या बोलूं ?

मानिक : सच !

डॉ० सरन : आपका पैर ठीक हो सकता है। इसे मैं ठीक करूंगा। नये सिरे से मैं इसकी दवा करूंगा। दवा से ठीक न हुआ तो मेरे एक अभिन्न मित्र---बहुत बड़े सर्जन हैं, उनसे ऑपरेशन कराऊंगा। बहरहाल, आपका यह पैर ठीक होगा।

मानिक : सच डाक्टर !

डॉ० सरन : हां। बिलकुल सच। जिस रास्ते से नीचे पैर में खून बहता है, वहां कहीं रुकावट आ गयी है। आपकी केस हिस्ट्री से मुझे ऐसा लगता है।

मानिक : धन्यवाद डाक्टर ! मैं आपको अपना ईश्वर मानूंगा···।

डॉ० सरन : नहीं बिलकुल नहीं। यह मेरा धर्म है।

मानिक : ओह वण्डरफुल ! चमत्कार··· चमत्कार !

(मानिक एक ही पैर से नाचने लगता है। फिर पुकारते हुए दौड़ता है।)

मानिक : शोभना ! ··· शोभना ! आओ आज मैं तुम्हारे संग 'रोम्बा शोम्बा' डान्स करूंगा।

(प्रस्थान)

मानिक : **(पृष्ठभूमि से आवाज)** शोभना दीपा·· दीपा···।
(पुनः प्रवेश कर भावोन्मत्त) वीरसिंह··· वीरसिंह !

वीरसिंह : **(प्रवेश कर)** क्या है शरकार ?

मानिक : शोभना कहां गयी ?

वीरसिंह : मिश शाहब बश स्टॉप की ओर टहलने गयी हैं।

मानिक : **(हंसता है)** टहलने नहीं, उस असिस्टेण्ट डाइरेक्टर रामकिशोर का रास्ता देखने गयी है। भला अब यहां आयेगा ! अरे वह अपनी गुलदस्ता-जैसी वाइफ---कुन्तल डे··· नहीं नहीं, अब कुन्तल किशोर को संग लिये हुए कश्मीर गया होगा, क्योंकि वहां उसके विभाग का डाइरेक्टर

गया हुआ है। रामकिशोर को डिप्टी डाइरेक्टर होना है। जाओ, यह कह दो मिस शोभना से !

(वीरसिंह सिर झुकाये जाने लगता है।)

मानिक : (परम उत्साह में) रुको ! इस वक्त मैं खुद चलूंगा शोभना के पास। (जाते-जाते) मुझे सूचना देनी है कि मेरा पैर अब ठीक होने जा रहा है। मैं अब उसी तरह 'बॉल डान्स' कर सकता हूं ···।

(तेजी से प्रस्थान। पीछे वीरसिंह जाता है। डॉक्टर सरन बाहर देख रहे हैं—उमड़ते बादलों को। सहसा दीपा का प्रवेश। दोनों चुप खड़े रहते हैं। डाक्टर बाहर देखते हुए, दीपा डाक्टर को देखती हुई।)

डॉ० सरन : दीपा ! तुम कहां थीं ? मानिक अभी खुशी में पागल तुम्हें ढूंढ रहे थे।

दीपा : मुझे नहीं; अपने उस दोस्त को। तभी वह मुझे देखकर भी न देख सके।

डॉ० सरन : तुमने सुना दीपा ?

दीपा : हां, सब सुना।

डॉ० सरन : फिर तुम इतना उदास क्यों हो ? चलो, हम लोग उस देवदारु वाली सड़क पर टहल आयें।

दीपा : मुझे देवदारु के पेड़ों से डर लगता है।

डॉ० सरन : अच्छा चलो, यहां से कहीं एक क्षण के लिए बाहर तो निकलें।

दीपा : बाहर बादल आ गये हैं।

डॉ० सरन : तुम्हारे यहां आने से कुछ ही क्षण पहले वे बादल यहां आये हैं !

दीपा : पता नहीं ! ····

डॉ० सरन : दीपा !

दीपा : मैंने आप से पहले ही बता दिया कि मैं दीपा नहीं हूं।

डॉ० सरन : हां हां, तुम उस मानिक सहाय की धर्मपत्नी हो, जो आज भी, अपनी इस हालत में भी उस लड़की के साथ···।

दीपा : बस··बस ! मैं सिर्फ अपनी भावनाओं के प्रति, अपने प्रति जिम्मेदार हूं।··· वह 'वही' हैं, वे चाहें जो कुछ करें···।

डॉ० सरन : तुम्हें पता है ! जिस क्षण से वह लड़की यहां आयी है, मिस्टर मानिक की क्या दशा है ?

दीपा : सब पता है।··· यह आपके लिए आश्चर्य होगा, मैं तो आदी हो गयी हूं···और तटस्थ भी !

डॉ० सरन : और वैरागी भी—यह भी कहो न !

दीपा : सुनो,··· तुम से मैं एक प्रार्थना करने आयी हूं, बुरा मत मानना। और यदि बुरा भी मान लोगे तो क्या करूंगी।

डॉ० सरन : ओहो, कुछ कहोगी तो···।

दीपा : तुम अपनी डाक्टरी से उनका पैर ठीक कर दोगे—तो क्या मुझे भी उनके संग तुम्हारे समीप रहना होगा ?

डॉ० सरन : हां, जरूर···।

दीपा : यह मुझ से सम्भव नहीं। दीपा यदि कहीं जी जायगी तो क्या होगा ? बोलो··· उत्तर दो मुझे। अब बोलते क्यों नहीं ? मैं इस विराट् प्रकृति के बादल को नहीं जानती ! मैं अपने अन्तस् के बादलों को जानती हूं जो मेरे आसमान से कभी नहीं छंटते।

(डॉ० सरन चुपचाप अपने कमरे की ओर जाने लगते हैं। दीपा सामने खड़ी हो जाती है।)

दीपा : यूं नहीं जाने दूंगी, हां ! मुझे रास्ता बताकर जाना होगा। कि वह दीपा जिये भी नहीं, और मेरे पति का पैर भी ठीक हो जाये!

(डॉक्टर एक क्षण दीपा का मुख देखकर निरुत्तर भीतर

चला जाता है । दीपा उसी ओर देखती खड़ी रह जाती है । दूसरी ओर से वीरसिंह के साथ बेतरह हंसते हुए मानिक का प्रवेश ।)

वीरसिंह : शाहब, इन्हें शंभालिए । शंभालिते-शंभालिते रास्ते में कई जगह गिर पड़े ।

दीपा : तो आज खूब पी ली ।

मानिक : (हंसता हुआ) कमाल है ! देखो न, कहीं मेरी जबान लड़खड़ा रही है ? या मेरे व्यवहार में कोई अन्तर आ गया ? अरे, एक पैर का आदमी, वह तो लड़खड़ायेगा ही । क्यों वीरसिंह . . . ।

वीरसिंह : हां जी शाहब !

दीपा : तो वह शोभना जी आपको नहीं मिलीं ?

मानिक : जब बीच में तुम खड़ी हो, तो मुझ से कौन मिल सकता है ? तुम्हारी वजह से शोभना यहां से गयी है । 'टेबल मैनर्स' नहीं । चाय पीते-पीते बीच में ही उठकर भाग निकली !

[दीपा चुपचाप भीतर जाने लगती है । पीछे-पीछे मानिक 'मैं तुझे खूब जानता हूं'—यह कहते हुए जाता है ।]

(प्रस्थान ।)

वीरसिंह : छीः छीः छीः यह शाहब कैसा हो गया अब !

[सामने डॉक्टर का प्रवेश ।]

डॉ० सरन : (हँसते हुए) तुम कहां उस खून जांचने वाली मशीन से डर रहे थे ! अब बोलो वीरसिंह !

वीरसिंह : (घबरा उठता है) तो क्या पीला बुखार इस बंगले में आ गया शाहब !

डॉ० सरन : (चुप बादलों को देखता रह जाता है) लगता है, आज बारिश होगी वीरसिंह ।

वीरसिंह : शाहब, कोई दवा सोचिए पीले बुखार की ! मेरे लड़के की

शादी तै हो चुकी है। शाहब दवा सोचिए···।

[मानिक का प्रवेश, वीरसिंह का प्रस्थान।]

मानिक : और मेरे लिए भी सोचिए डाक्टर साहब !

डॉ० सरन : आपके लिए ! ···आपके लिए उस गरम पानी के सोते में स्नान ही करना ठीक होगा।

मानिक : और आपके हाथों मेरी दवा ? मेरा ऑपरेशन ?

डॉ० सरन : वह अभी मुमकिन नहीं है। आ' एम सॉरी···।

[मानिक कुरसी का सहारा लेकर खड़ा रह जाता है।]

मानिक : (कटुता से) मैं जानता था तुझे !

[भीतर से दीपा आती है।]

दीपा : (मानिक को संभालती हुई) चलिए, आप अपने कमरे में आराम कीजिए।

मानिक : क्यों ?

दीपा : ठण्डी हवा चल रही है। कहीं आपको···

मानिक : आखिर क्यों ?

[दीपा चुप है]

मानिक : सुनो, मैं बताता हूं क्यों। इसलिए कि तुम यहां अपने इस प्रेमी डाक्टर से प्रेम की बातें कर सको। यहां आते ही मुझे यह पता चल गया कि तुम मुझे यहां लेकर क्यों आयीं ? मेरे पैर के बहाने से यहां प्रेमिका अपने प्रेमी से मिलने आयी है !

डॉ० सरन : चुप रहो, नहीं तो कहीं तुम्हारी जबान पर फालिज न गिर जाये ! चुप रहो !

दीपा : नहीं नहीं। इन्हें कह लेने दीजिए। इन्हें सब बक लेने दीजिए···! (डाक्टर से) मैं आप से क्षमा मांगती हूं।

मानिक : और मुझ से ?

दीपा : आप से कोई क्षमा नहीं।

डॉ० सरन : मरीज के पास क्षमा ? **(अपने कमरे की ओर जाते-जाते सहसा मुड़कर)** दीपा···सुनो···दीपा !

दीपा : नहीं, कुछ नहीं ! कुछ नहीं। **(कान बन्द करके जैसे चीख उठती है)** कुछ नहीं ! मेरी दीपा को मत पुकारो···· मत पुकारो उसे !

[फफककर रोती हुई सहसा जैसे टूट कर बैठ जाती है ।]

मानिक : **(टूट कर रोती हुई दीपा को अपलक देखकर)** दीपा···· तुम मुझे जानती हो, मैं क्या हूं ? मेरे भीतर का जानवर मेरे वश से बाहर हो जाता है। मेरा पिछला जीवन, उस जीवन की काली छाया मेरे इन्सान को ढंक लेती है। जैसे ये बादल··। उठो दीपा··· ! उठो···मुझे सहारा दो ··! मुझे देखो···।

[कन्धा पकड़ कर उठाता हुआ]

देखो दीपा··· जैसे ये बादल···। चलो, मुझे ठण्ड लग रही है। ले चलो मुझे !

[दीपा मानिक के साथ अविचल खड़ी है।]

कल सुबह मैं तुम्हारे साथ उस गरम पानी के सोते में स्नान करने चलूंगा। मेरा यह पैर शायद अच्छा हो जाये !

[दीपा मानिक को सम्हाले दायीं ओर बढ़ती है।]

डॉ० सरन : मेरा विश्वास है, यह पैर अब जरूर अच्छा हो जायेगा !

[दीपा और मानिक मुड़कर एक सजल दृष्टि से डॉक्टर को देखते रह जाते हैं। डॉक्टर का अपने कमरे की ओर प्रस्थान।]

(परदा)